आदर्श राम



खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई.

॥ श्रीः ॥

आदर्श राम

लेखकः—

दार्शनिकसार्वभौमः श्रीमाधवाचार्य्यः

श्रीराममन्दिर–वडगादी

बम्बई नं. ३



मुद्रक एवं प्रकाशकः

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४.

संस्करण- सन् १९९८ सम्वत् २०५५

मूल्य ८ रुपये मात्र

Printed by Shri Sanjay Bajaj for M / s Khemraj Shrikrishnadass proprietors Shri Venkateshwar press Mumbai 400 004. at their Shri Venkateshwar press, 66, Hadapsar Industrial Estate, Pune-411013.

दार्शनिकसार्वभौमः श्रीमद्रामानुजाचार्य–

श्रीमाधवाचार्यः



श्रीमद्देवसुनायकाङ्घ्रिजलजच्छायासुधासंश्रितान्,
वाक्यन्यायपदानुशासननिजाधीनान् प्रसन्नाननान् ।
वेदान्तार्थविमुग्धमानसमहामत्तेभपञ्चाननान्,
वन्देतानुपमन्युपुण्यफलितान् श्रीमाधवार्याभिधान् ॥

❋ समर्पण ❋



पूज्य श्री पिताजी को
जिनकी कृपाकोरने मेरे शैशवमें
ही मुझे इस आदर्शतत्व की ओर
उन्मुख किया.

त्यक्त्वा सुदुस्त्यज सुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं,
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावत्,
वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम् ॥

श्रीः

श्रीमतेरामानुजाय नमः

आदर्श राम



आदिकाव्य श्रीवाल्मीकिरामायणके रचयिता महर्षि वाल्मीकि बड़े विशिष्ट कवि थे। (कविर्मनीषी परिभूः स्वयंभूः याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात्शाश्वतीभ्यः समाभ्यः) इस ईशावास्योपनिषद्मेंवर्णित कवि-लक्षणके मात्र वे प्रधान लक्ष्य हैं। रामायणमें नर-वानर एवं पशु-पक्षियोंके स्नेह सम्मेलनका अति सुन्दर चित्र चित्रित किया गया है। भविष्यमें संसारको अनन्त कालतक समुचित मार्गका प्रकाश प्राप्त होते रहनेके दृष्टिकोणसे महर्षिने इस आदि काव्यकी रचना की तथा श्रीराम-चन्द्रके युगल कुमार लव और कुशको सर्व प्रथम पढ़ाया। रामायणमें भगवान् नारायणके वर रूपमें अवतार भूत श्रीरामका चरित्र चित्रण करते हुए आदि कविने समस्त मानव समाजके लिये एक आदर्श उप-स्थित किया है तथा आत्मश्रेयके लिये अनिवार्य्य कर्तव्योंकी ओर अग्रसर होनेकी प्रेरणा प्रदान की है। वेद जिनके विषयमें " पूर्णमिदं पूर्णमदः पूर्णात्पूर्णमुदच्यते " कहा करते हैं वास्तविकमें वे ही हमारे राम हैं। वे मानव समाजके हितके लिये पुरुष रूपमें अवतीर्ण होकर परम वात्सल्यके कारण अपने जीवन भर मानवके लिये अपरिहार्य और शक्य आचरण करते रहे हैं। इसलिये हमारी सभी चेष्टायें उनके कहने एवं आचरणके अनुसार ही होनी चाहिये। क्योंकि मानव मात्रके वे ही आदर्श पुरुष हैं। इस विषयका नारद और वाल्मीकिका सम्वाद कितना-मार्मिक और हृदयग्राही है।

कोन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान् ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढ़व्रतः ॥ (वा०मू०रा०)

वाल्मीकिने नारदसे पूंछा, संसारमें इस समय सर्वोत्कृष्ट गुणवान्, वीर्यवान्, धर्मज्ञ-कृतज्ञ सत्य वाक्य और दृढ़व्रत कौन है ?

नारदने कहा—

इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः ।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् धृतिमान् वशी ॥ (वा.मू.रा.)

महर्षे ! इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्न, संयत आत्मा, महावीर्य-द्युतिमान् धैर्यशील-जितेन्द्रिय और दृढ़व्रत तथा लोकविश्रुत-एकमात्र राम हैं । वे ही आपके लक्षणोंके लक्ष्य हैं ।

देखो ! इसी राम शब्दमें समस्त दिव्य ऐश्वर्योंका समावेश है । भगवान् राम संसारके कल्याणके लिये अप्राकृतसे प्राकृत हो जाया करते हैं । उनके ऐश्वर्यकी प्रकाशक, रामशब्दकी बड़ी सुन्दर सुन्दर व्युत्पत्तियाँ है ।

१. राति (ददाति) धर्मादीन् , इति रामः । जो धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष दिया करते हैं, वे राम हैं ।

२ राजते (शोभते) इति रामः । जिनमें लोकोत्तर सौन्दर्य है वे राम हैं ।

३. रमन्ते योगिनः अस्मिन् , इति रामः । जिनमें योगियोंकी आत्मा रमण करे । अर्थात् आनन्दके जिस महा समुद्रमें वे डूब जायें वे राम हैं ।

४. रमते सर्वत्र इति रामः । जो चर और अचरका आत्मा हों, अपनी व्यापकतासे सर्वत्र रम रहा हो, वही राम है ।

५. राणाम् (ज्ञानादीनाम्) आमः (निवासः) इति रामः। जो-ज्ञान आदिके पूर्ण अधिष्ठान हैं। वे राम हैं, उन्हींके ज्ञान और सुखका लेश मात्र प्राप्त कर लेनेसे ही संसारके लोग ज्ञानवान्, बड़े वैज्ञानिक तथा सुखी बन जाते हैं।

रामकी इसी व्यापकता और परिपूर्णताके प्रत्यक्ष हो जानेसे मारीचने कहा था कि—

वृक्षे वृक्षे च पश्यामि चीरकृष्णाजिनाम्बरम्।
गृहीतधनुषं रामं पाशहस्तमिवान्तकम्॥
अपि रामसहस्राणि भीतः पश्यामि रावण।
राम भूतमिदं सर्वमरण्यं प्रतिभाति मे॥

रावण ! मैं, वलकल और मृगचर्म पहनकर धनुष-वाण धारण करने वाले रामको, हाथमें पाश धारी यमराजके समान प्रत्येक वृक्षमें देख रहा हूं। इतना ही नहीं, किन्तु इतना अधिक डर रहा हूं कि मुझे सहस्रों रामही राम दिखाई पड़ रहे हैं। यहां तक कि सारा अरण्य ही राममय हो रहा है।

इस तरह रामके ऐश्वर्य, उनकी व्यापकता तथा लोक मयताके अनन्त दृष्टान्त हैं। पञ्चवटीमें खर-दूषण आदिके संग्रामके समय सारा सैन्यका सैन्यही एक दूसरेको रामरूप देखकर लड़, कटकर मर गया।

इसी प्रकार और भी कितने ही प्रसंगोंमें जहां कहीं पर भी भगवान्को अधिक भक्तोंसे एक ही साथ मिलनेके प्रसंग आते हैं। वहां सर्वत्र ही उनके अमित रूपका प्राकट्य देखा जाता है। राम ही सारे विश्वके माता-पिता-बन्धु-मित्र तथा सर्वस्व एवं पूर्णतम पुरुषोत्तम हैं। और वही हैं मानव रूपमें अवतीर्ण दाशरथी राम।

महर्षि वाल्मीकिका सामर्थ्य और ज्ञान लोकोत्तर था। उनके रामायणमें वर्णित विषय और लीलायें रामके प्रधान चरित्र होनेके नाते, मानव समाजके लिये आदर्श एवं अनुकरणीय हैं।

इस रामायणके विषयमें कतिपय महानुभावोंकी यह विभ्रान्त धारणा रही है कि यह ग्रन्थ "होमर" कृत "ईलियड" ग्रन्थका अनुकरण मात्र है। वे कहते हैं कि जिस प्रकार "ईलियड" ग्रन्थमें "हेलन" रानीको लानेके लिये "माट्रोजन" युद्धका वर्णन आता है। वैसे ही रामायणमें भी सीताजीके लानेके प्रसंगमें राम और रावणके युद्धका भी वर्णन आया है। परन्तु यह समझना नितान्त असंगत एवं भ्रमपूर्ण है। "हेलन" रानी तो स्वयं अपने आप अपने पतिका परित्याग करके और अपने अभीष्ट पात्रके पास पहुँच गई हैं। किन्तु आदर्श पतिव्रता श्रीसीताका तो राक्षस रावण द्वारा बलात् अपहरण किया गया है। उनका चरित्र लोकके लिये आदर्श एवं परम पवित्र है। इसलिये श्रीवाल्मीकि रामायण होमरके ईलियडका अनुकरण और कोरी कल्पना नहीं अपितु वह मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीरामके चरित्रवर्णनका अति सत्य एवं स्वतन्त्र ग्रन्थ है। उसके प्रतिपात्रोंके चरित्र हमारे आदर्श तथा अनुकरणीय हैं। देखिये—

श्रीरामके समयमें शिक्षाका प्रकार

रामके समयकी शिक्षा केवल अर्थ और काम प्रधान नहीं थीं उसमें धर्म और मोक्षका प्रधान ध्यान रखा जाता था। उस समयकी प्रारम्भिक शिक्षण व्यवस्था अपने २ घरोंमें ही सम्पन्न हो जाती थी, और उच्चतम शिक्षण तो तपोवनके गुरुकुलोंमें चला करते थे। अपने छोटे २ बच्चोंको माता-पिता प्रातःकालमें सुनाया करते थे कि नल और युधिष्ठिर बड़े धर्मात्मा थे प्रातःकालमें उनक नाम स्मरणसे बड़ा पुण्य होता है।

पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः ।

इस प्रकार उन छोटे बालकोंको इनके स्मरणके साथ ही साथ इनके समूचे इतिहासका भी पूर्णरूपसे ज्ञान करा दिया जाता था । आज के बालक पाश्चात्य शिक्षासे शिक्षित होनेसे विदेशियोंको मूत्र विसर्जनकी क्रियासे भले ही सुपरिचित रहें । परन्तु उन्हें यह पता नहीं रहता कि भीष्म किसके पुत्र थे। गुरुकुलकी प्राचीन शिक्षण पद्धतिमें शौच, आचार-विचारसे लेकर समस्त जीवनोपयुक्त तत्वोंका ज्ञान प्राप्त होता था । शिक्षा भी निश्शुल्क थी । वहांपर धनी और निर्धनी बच्चोंमें भेद-भाव नहीं रखा जाता था । सुदामा और श्रीकृष्णकी साथ २ लकड़ी लाने जानेकी कथा अति प्रसिद्ध है । उस समय गुरुकुलोंसे राजाओं और धनिकोंका विशेष सम्बन्ध रहता था । जिससे वे सुचारु रूपसे चलते रहते थे । उदाहरणके लिये सम्राट रघुके यहां जाने वाले कौत्स विद्यार्थीके गुरु दक्षिणाका प्रसंग पर्याप्त है ।

गुर्वर्थमर्थी श्रुतपारदृश्वा रघोः सकाशादनवाप्य कामम् ।
गतो वदान्यान्तरमित्ययं मे मा भूत्परीवादनवावतारः ॥
जनस्य साकेत निवासिनस्तौ द्वावप्यभूतामभिनंद्यसत्वौ ।
गुरुप्रदेयाधिकनिस्पृहोऽर्थी नृपोऽर्थिकामादधिकप्रदश्च ॥

(रघुवंश)

रिक्तहस्त राजा रघुने सोचा कि गुरु दक्षिणाके लिये मेरे पास आये हुए विद्वान् कौत्सका मनोरथ यदि मेरे यहां न सफल हुआ, तो इनके अन्यत्र जानेसे मेरी निन्दाका एक नवीन अध्याय बन जायगा ।

"रघुकी पवित्र भावनासे कुबेरने उनका कोष भर दिया ।"

महाराज रघु कौत्सको सभी धनराशि उठा ले जानेका आग्रह कर रहे हैं और कौत्स गुरु दक्षिणासे अधिक एक टका भी न लेने का । उस समयके दाता और प्रतिग्रहीता दोनों ही प्रशंसाके पात्र थे ।

आजका विद्यार्थी आचार-विचारसे शून्य हो वासनाओंकी चोटी पर चढ़ना चाहता है। विश्वविद्यालयों-पुस्तकालयोंकी भरमार होने पर भीं किसीको भी आनन्द और सन्तोषकी सांस नहीं आती। पढ़नेका ज्ञान पुस्तकोंकी जिल्दों तक ही सीमित रह जाता है।

सुखार्थी चेत् त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी चेत् त्यजेत्सुखम्।
सुखार्थिनः कुतो विद्या विद्यार्थिनः कुतः सुखम्॥

सुखार्थीको विद्या, और विद्यार्थीको सुखकी तृष्णा त्याग देनी चाहिये। दोनों विरोधी विषय हैं।

पूर्व कालकी अध्ययन प्रणालीमें, ब्रह्मचर्यका बड़ा महत्त्व था और उस पर अधिक ध्यान दिया जाता था। परन्तु आज तो इसका सर्वथा लोप होता जा रहा है, और आजकी शिक्षण प्रणालीसे शिक्षित स्नातक वासनाओंमें पशुओंसे होड़ ले रहे हैं। कितना सुन्दर था प्राचीन शिक्षा का आदर्श और कितनी अभद्र हैं आजके कुत्तोंकी वासनायें।

वेद कहता है कि "ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत" अर्थात् ब्रह्मचर्य रूप तपसे देवताओंने मृत्युपर विजय प्राप्तकर लिया। जैसे—जलानेवाले शीशेसे केन्द्रीभूत किरणोंके द्वारा ही किसी वस्तुको जला सकते हैं, अन्यथा नहीं। उसी प्रकार ब्रह्मचर्य व्रतके द्वारा अन्तः करणमें केन्द्रीभूत शक्तिसे ही निर्मलज्ञान सम्पादित हो सकता है। तेज या शक्ति प्राप्त करनेकी कितनी सुन्दर प्रार्थना वेदोंमें मिलती है।

यत्ते अग्ने तेजस्तेनाहं तेजस्वी भूयासम्।

प्रति दिन अग्निमें मन्त्रों द्वारा आहुति देना यह एक शास्त्रीय प्रधान विधान है। परन्तु उसका तो लोप होते होते, बीड़ी या सिगरेट पी लेनेपर ही पर्यवसान हो गया है।

हे अग्निदेव मैं आपके तेजको प्राप्त कर तेजस्वी बन जाऊँ ।

इसी प्रकार गुरु और शिष्यके सहअस्तित्वकी पार्थनाके विषयमें वेदोंने कितना अनुपम चित्रण किया है ।

ॐ सहनाववतु सह नौ भुनक्तु सहवीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु , मा विद्विषावहै ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥

हे भगवान् ! आप कृपाकरके हम दोनोंका साथ साथ रक्षण करें । साथ ही भोजन हो । एक साथ मिलकर पुरुषार्थ करें हम सबके अध्ययन तेजस्वी हों और आपसमें विद्वेष न हो ।

गुरुकुलोंके आचार्य प्रातःकाल अपने शिष्योंको सन्ध्या वन्दन एवं देवाराधनकी प्रेरणा दिया करते थे ।

रामेति मधुरां वाणीं विश्वामित्रोऽभ्यभाषत ।
उत्तिष्ठ नरशार्दूल ! पूर्वा सन्ध्या प्रवर्तते । (वा. रा.)

महर्षि विश्वामित्रजी मधुर शब्दोंमें कहते थे कि हे राम ! अब प्रातः सन्ध्याका समय हो गया है । अतः आलस्य मत करो ।

स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम् ।

वेदके अध्ययन और प्रवचनमें प्रमाद नहीं होना चाहिए । सारांश यह कि रामके समयकी शिक्षा पद्धतिका जबसे शनैः शनैः ह्रास होता चला आया तबसे सारे ज्ञानका विकास ही समाप्त होगया आज तो कालेजों और विश्वविद्यालयोंसे पढ़कर निकले हुए स्नातक—प्रायः असुर ही हुआ करते हैं, क्योंकि उन सभीके आनन्दके एक मात्र-लक्ष्य-शरीर-इन्द्रिय-एवं असु या प्राण ही हो जाते हैं ।

वे बेचारे आचार-विचार एवं आध्यात्मिकता तथा मानवतासे तो नितान्त अछूते ही रह जाते हैं। भगवान् करें प्राचीन शिक्षाके आदर्श से एक वार फिर संसारको आलोक प्राप्त हो।

रामके समयके कुटुम्बका चित्र

उस समयके कुटुम्बियोंका परस्पर जितना अविच्छेद्य स्नेह था, उतना तो क्या? इस समय उसका लेश भी नहीं दिखाई देता। आज तो मुक्त प्रणय अथवा विवाह विच्छेदका हो ताण्डव दिखाई देने लगा है। आज कहीं भी प्रेम, दृष्टिगोचर नहीं होता जो है भी वह प्रेम नहीं किन्तु मोह है। प्रेम एक स्वतन्त्र तत्व है। मोह तो सांसारिक दुःखोंका प्रधान मूल है। इसीलिये गीता ज्ञान दे चुकनेके अनन्तर जब श्रीकृष्ण भगवान्ने अर्जुनसे पूछा कि क्या? मेरे वचन श्रवणसे तेरा अज्ञान जन्य मोह नष्ट हो गया?

कच्चिदेतच्छ्रुतं पार्थ त्वयैकाग्रेण चेतसा।
कच्चिदज्ञानसंमोहः प्रनष्टस्ते धनंजय।
(गीता अ० १८)

इसपर अर्जुनने उत्तर दिया—

नष्टो मोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत।
स्थितोऽस्मि गतसन्देहः करिष्ये वचनं तव॥
(गीता अ० १८)

हे अच्युत! आपकी कृपासे मेरा मोह नष्ट हो गया और मुझे स्मृति प्राप्त हुई है। इसलिये मैं संशय रहित हुआ स्थित हूं और आपकी आज्ञाका पालन करूंगा।

पूर्व कालीन विवाहकी प्रथा एवं एक पत्नी व्रत आदि नियम अति महत्वपूर्ण एवं वैज्ञानिक हैं। सर्वत्र प्रसरणशील अर्थात् पाशविकी कामवासनाओंको संकुचित करके–उन्हें केन्द्रित करके-धर्मके एक अङ्गके रूपमें पुण्यके रूपमें सेवन करनेसे आत्मश्रेय प्राप्त होता है। तभी तो भगवद्गीता कहती है कि—

धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ।

भगवान् कहते हैं कि समस्त भूतोंमें मैं धर्मानुकूल काम भी हूँ।

यदि इस प्रकार वासनामयी कामनाओंपर नियन्त्रण न रखा जाय तो वे उपभोगके द्वारा कभी भी प्रशान्त नहीं हो सकतीं। क्योंकि हविष्यकी आहुतियों द्वारा तो अग्निकी ज्वालायें बढती ही रहेंगी।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते॥
(श्रीमद्भागवत)

इसीलिये शास्त्रीय विवाह प्रथा अत्यावश्यक है।

धार्मिक और सन्तोषमय वृत्ति होनेके कारण रामकालीन कौटुम्बिक सुख स्वर्गको भी लज्जित कर रहे थे। वास्तविकमें गृहस्थाश्रम इसी प्रकारका भव्य होना चाहिये। देखो किसी गृहस्थाश्रमके आनन्दकी लहर।

सानन्दं सदनं सुताश्च सुधियः कान्ता न दुर्भाषिणी,
सन्मित्रं सधनं स्वयोषिति रतिश्चाज्ञापराः सेवकाः।
आतिथ्यं हरिपूजनं प्रतिदिनं मिष्टान्नपानं गृहे,
साधोः संगमुपासतेहि सततं धन्यो गृहस्थाश्रमः॥

यदि घर आनन्द पूर्ण हो, पुत्र सुन्दर बुद्धि वाले एवं विद्वान हों, कान्ता कटु भाषिणी न हो, और अच्छे २ सम्पन्न मित्र हों, शास्त्रोचित विधानसे विवाहित अपनी पत्नीमें विशुद्ध प्रेम हो, तथा सेवक वर्ग हृदय से आज्ञाकारी हों। प्रतिदिन आतिथ्य सत्कार एवं भगवत्पूजन होता चले और भगवानके नैवेद्य लगे हुए मिष्टान्न-पान, प्रसाद रूपमें मिलते रहें। निरंतर सत्संगकी उपासना जहां चलती रहे तो वह गृहस्थ आश्रम अतिधन्य है।

उस समय स्त्रियोंको भी गार्हस्थ्य जीवनकी उपयोगी शिक्षा दी जाती थी और वे समय विशेष पर पुरुषोंके बड़ेसे बड़े कार्योंके भी करने की क्षमता रखती थीं। श्रीरामके वन गमन समयमें महर्षि वसिष्ठने सीता जीके विषयमें कहा था—

आत्मा हि दारा सर्वेषां दारसंग्रहवर्तिनाम्।
आत्मेयमिति रामस्य पालयिष्यति मेदिनीम्॥
(वा० रा०)

सभीकी स्त्रियां उनके आत्माके सदृश ही हुआ करती हैं। अतः रामको हो आत्मा श्रीसीताजी भी सारी पृथ्वीका पालन कर सकती हैं और करेंगी। इसीलिये भरतकी माता कैकेयीने अपने वर मांगनेके समय राजा दशरथसे भरतको ही राजा बनाने और राज्यसंचालन करनेको मांगा था। अन्यथा यह कार्य कदाचित् सीताजीके भी द्वारा सम्पन्न कराया जाने लगता तो ?

परन्तु यह स्मरण रहे कि स्त्रियोंके सभी कार्य पुरुषों द्वारा और पुरुषोंके स्त्रियोंसे सम्पन्न नहीं बनाये जा सकते। जैसे—स्त्रियोंके गर्भधारण और अपत्य सँगोपन आदि कार्य पुरुषोंके लिये असम्भव हैं। अतः सर्वथा साम्यका नारा लगाना भी अति अनुचित है।

डाक्टर-वैरिस्टर एवं टायपिस्ट आदिके कर्मोंकी कुशलता स्त्रियोंमें न भी हो, तो कोई हानि नहीं, परन्तु माता, सखी एवं सहचारिणी आदिके कर्मोंकी दक्षता तो उनके लिए अनिवार्य एवं नितान्त आवश्यक है। भारतीय शास्त्रोंने स्त्रियोंका महत्व गृहलक्ष्मीके रूपमें देते हुये कहा है कि जिस घरमें नारियोंका सत्कार होता है, वहां देवता स्वर्ग बना देते हैं।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः"

विवाहके प्रसंगमें वेदके आशीर्वचन कितने सुन्दर मार्मिक और अविच्छेद्य सम्बन्धकी घोषणा करते हैं।

१—(समानीव आकूतिः) दम्पतीकी चेष्टायें समान हों।

२—(समानानि हृदयानि वः) तुम्हारे हृदय सर्वदा समभावसे रहें।

३—(समानमस्तु वो मनः) तुम्हारे मनभी समान रहें।

कितनी सुन्दर भावनाएं और कितने विशुद्ध प्रेमकी झांकियां हैं। पवित्र गृहस्थ आश्रमका कौटुम्बिक और दाम्पत्य जीवन सुख तथा दुःख की विषम अवस्थाओंमें भी समान भाव अर्थात् सुख दुःखकी एक विशिष्ट अभेदताकी अनुभूति कराता है। वह हृदयकी विश्रामस्थली है और वृद्धताकी रूक्षता भी उसे नीरस नहीं बना सकती, काल द्वारा आवृत्त या परिणत होनेपर भी जहांकी स्नेहधारा अमर बनी रहती है। इस मानवीय जीवनके भद्ररसकी सुखानुभूति रूखे एकाकीपनमें कैसे हो सकती है।

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुगतं सर्वास्ववस्थासु य—
द्विश्रामो हृदयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।

कालेनावरणात्ययात्परिणते यत्स्नेहसारेस्थितम्,
भद्रं तस्य सुमानुषस्य कथमप्येकं हि तत्प्राप्यते ॥

अब आजके गृहस्थोंके कौटुम्बिक जीवनका एक चित्र देखिये—

आः पाकं न करोषि पापिनि! कथं पापी त्वदीयः पिता,
रण्डे ! जल्पसि किं तवैव जननी रण्डा त्वदीया स्वसा ।

निर्गच्छ त्वरितं गृहाद्बहिरिति नेदं त्वदीयं गृहम्,
हा हा नाथ ! ममाद्य देहि मरणं जारस्य भाग्योदयः ॥

किसी पतिने अपनी पत्नीसे कहा क्यों रे पापे ! भोजन नहीं बना रही है तो उसने कहा मैं नहीं, तेरा पिता, पापी है। पतिने कहा—अरे रण्डे क्या बड़बड़ कर रही है, तो उसने उत्तर दिया कि तेरी ही माता और बहिन रण्डा हैं। पतिने कहा जल्दी निकल घरसे, उसने कहा यह तेरा घर नहीं है।

पतिने विलाप करते हुए कारुणिक स्वरमें कहा हे नाथ ! अब तो मृत्यु दीजिये क्यों कि इस घरमें तो जारोंका ही भाग्योदय है उन्हीं का स्वागत होगा।

इससे स्पष्ट है कि आजकी अपेक्षा क्रमशः पूर्व पूर्वकी कौटुम्बिक व्यवस्थायें सुन्दर चरित्र सम्पन्न एवं आदर्शभूत थीं।

आइये, श्रीरामके ही परिवारके प्रति पात्रोंका अति स्वल्प रूपसे कुछ अध्ययन करलें।

दशरथ

ये बड़े वेदवेत्ता, चतुर-बुद्धिमान् और प्रज्ञासम्मत थे। इनकी दीर्घदर्शिता तथा सत्यप्रियता अनुपम थी। इनका विशाल हृदय

अति श्रीमान् था, अतः उसके फलस्वरूप ये बहुत सरल तथा भोलेभाले थे। उस भोले स्वभावके कारण प्रायः विमर्शन करते हुए भी किसीके लिये कुछ भी दे देने और कहनेके लिये सचेष्ट रहा करते थे। जिनके कुछ उदाहरण नीचे निर्दिष्ट हैं जैसे—

१—कैकेयीके विवाह प्रसङ्गमें उसके पिताके लिए—"इसीके पुत्रको अभिषिक्त करूँगा" यह वचन देकर विवाह सम्पन्न करना।

२—यज्ञ रक्षाके प्रसंगमें रामकी याचनाके लिए आए हुए महर्षि विश्वामित्र आदिके थोड़ा समझाने पर विना इच्छाके भी श्रीरामको दे देना।

३—रामके राज्याभिषेकके समय पूर्वापर विमर्श न करते हुए कैकेयीके थाती रखे हुए दोनों वरदानोंको दे देनेके लिये वचन बद्ध हो जाना आदि।

कौशल्या

इनका स्वभाव अति सरल था। समय समयपर कैकेयीसे कुछ अपमान हो जानेपर भी इनका मन स्वभावतः निर्विकार ही रहा करता था। अपमानका अंकुर नहीं उगता था। ये सोचती थीं कि वाम हाथसे दक्षिण हस्तका अपमान कैसा ? आदर्श कुटुंब व्यवस्थाके सञ्चालनमें ये आदर्श रूप थीं। रामके बनवास चले जानेपर ननिहालसे लौटे हुए भरतलाल जब अति विह्वल होने लगे तो श्री कौशल्या माताने उन्हें अपने गोदमें बिठाकर अति हृद्य और सरल शब्दोंमें आश्वासन दी हैं। एकाधवार स्त्री प्रकृतिवश इनके स्वभावमें भी कुछ मन्दताकी झलक आती दीख पड़ती है। जैसे—

रामके राज्याभिषेकके समाचार सुनकर "मैं राजमाता हूँगी" हृदयमें यह भाव जागृत हो गये थे। प्रभातकालमें वनप्रयाणकी समस्या सुनकर जब लषणलालजी क्रोधावेशमें आकर कौशल्या माताके समक्ष कहने लगे कि मैं पिताजी एवं भरत तथा सभी अयोध्यावासियोंको विनष्ट कर दूँगा, उस समय भी कुछ 'मौनं स्वीकार लक्षणम्' की मुद्रा झलक पड़ती है। अस्तु यह तो अपवाद प्रसंग है। फिर तो बिलपते हुए श्री दशरथजीको इन्होंने पूर्णरूपसे प्रबुद्ध करनेकी चेष्टा की है। ये—आदर्श माता थीं और राम आदिको गुरु जैसे शिक्षित की हैं।

सुमित्रा

सुमित्राका मातृत्व और कर्तव्यनिष्ठा लोकोत्तर थी। श्रीलषणलालजी—रामके साथ वन जानेकी आज्ञा मांग रहे हैं। तब माता सुमित्रा के उत्तर हैं—

रामं दशरथं विद्धि मां विद्धि जनकात्मजाम्।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथा सुखम्॥ (वा. रा.)

हे पुत्र! रामको पिता दशरथ और सीताको अपनी माता— एवं बनस्थलीको ही अयोध्या समझते हुए सानन्द अनुगमन करो।

कौशल्याको भी अपने दुःखोंके समय सुमित्राके द्वारा ही आश्वासन प्राप्त होते रहे हैं।

कैकेयी

कैकेयी विशिष्ट वीरांगना थी। एक वार भयंकर युद्धप्रसंगमें जब राजा दशरथके रथका चक्र विकृत हो गया था, तो उस समय कैकेयीने बड़ी धीरता और वीरताके साथ सहायता की थी। और उसी

समय सुप्रसन्न दशरथसे सेवाके फलस्वरूप दोनों वरदान उसे प्राप्त हुए थे। परन्तु कैकेयी बड़ी भोली-भाली भी थी। वह दशरथजीके द्वारा अति लाड़ की जानेसे अहंकारपूर्ण रहा करती थी। अहंकारके पेटमें अविवेक प्रवेशकर जाता है और तब उससे बड़े बड़े अकार्य होने लगते हैं। इसीसे वह रामके बनवासरूप कलंकका कारण बन गई। परन्तु उसका भोलापन भी ऐसा विचित्र था कि जब भरतजी समझाये, और रामको लौटानेके लिए चलने लगे तो सभीके साथ वह भी लौटानेके लिए सर्वप्रथम रथपर बैठ गई। उसी समय उसका हृदय निर्विकार बन गया।

राम

ये ही रामायण काव्यके प्रधान नायक हैं और विष्णुके अवतार होते हुए आदर्श मानव भी। देवताओंके स्तवन प्रसंग में उन्हींकी कही हुई श्रीमुख वाणी है कि—

"आत्मानं मानुषं मन्ये रामं दशरथात्मजम्" (वा० रा०)

मैं नर लीला करनेके लिये अपने आपको दशरथका पुत्र मानव राम मानता हूँ। इसीलिये तो, सुवर्ण मृगकी असम्भवपना जानते हुए भी विपत्तिग्रस्त साधारण मनुष्य जैसे उसके वधमें प्रवृत्त हो गये। यह उनकी नर-लीला ही थी।

असंभवं हेमामृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभे मृगाय।
प्रायः समासन्नविपत्तिकाले धियोऽपि पुंसां मलिनी भवन्ति॥
(हितोपदेश)

इसी प्रकार मानवताके व्यंजक, और भी प्रसंग है—लीलायें हैं। जैसे—

१—सीताके अन्वेषण करनेके समय वृक्ष तथा लताओंसे भी पूछते हुए करुण-क्रन्दन करना—विलाप करना।

२—राज्यसे उन्मत्त हो गये सुग्रीव पर मानव प्रकृतिके अनुरूप क्रुद्ध हो जाना। आदि

राम, सुख और दुःख दोनों दशाओंमें भी समशील बने रहते थे। जैसे—

आहूतस्याभिषेकाय विसृष्टस्य वनाय च।
न मया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्याकारविभ्रमः॥ (वा० रा०)

राज्याभिषेक और वन निर्गमन, इन दोनों अवसरोंमें भी रामके चेहरे पर कुछ भी प्रसन्नता एवं चिन्ताके विकार नहीं प्रतीत हुए वे सम-भाव बने रहे। इसीलिये—

यश्च रामं न पश्येत्तु यं च रामो न पश्यति।
निन्दितः सर्व लोकेषु स्वात्माप्येनं विगर्हते॥(वा० रा०)

जो रामको नहीं देखता और जिसे राम नहीं देखते। वह लोकमें अतिनिन्दित है और गर्हित आत्मा है।

श्री रामायण रूप सुंदर मंदिरमें अन्य पात्र तो ईंटके स्थानमें लगे हुए हैं और रामध्वजके स्थानमें सुशोभित हैं।

तेषां केतुरिवश्रेष्ठः रामः सत्य पराक्रमः। (वा० रा०)

किसी भी कक्षासे देखनेपर राम सर्वोत्तम दिखते हैं वे एक आदर्श पुत्र थे।

न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः।
मद्विधा वा पितुः पुत्राः सुहृदो वा भवद्विधाः॥ (वा०रा०)

राम विभीषणसे कहते हैं कि हे तात ! सभी भाई भरतलालके समान नहीं हो सकते तथा सभी पिताके लिए मेरे सदृश पुत्र भी दुर्लभ हैं और आप जैसे सुहृद् भी ।

कैकेयीको समझाते हुए राजा दशरथने भी कहा है कि—पिताके आदेशको माननेवाला राम जैसा पुत्र दुर्लभ है—नहीं है । "रामो द्विर्नाभिभाषते" राम पूर्वापर असम्वद्ध दो बात नहीं करते । आगे तो महाराज श्री दशरथजी यहांतक कह डाले हैं कि यह भी मेरा दुर्भाग्य ही है जो राम मेरे आज्ञाकारी वचनपालक पुत्र हैं । नहीं तो वे आज यदि मेरी बात ठुकराकर वन न जाते, रह जाते तो मैं अति सुखी हो जाता ।

चित्रकूटमें भरतसे राम स्वयं कहते हैं—

लक्ष्मीश्चन्द्रादपेयाद्वा हिमवान् वा हिमं त्यजेत् ।
अतीयात् सागरो वेलां न प्रतिज्ञामहं पितुः ॥ (वा० रा०)

चन्द्रकी ज्योत्स्ना चाहे उससे अलग होजाय तथा हिमालय हिम शून्य बन जाय । समुद्र चाहे अपनी सीमाको अतिक्रान्त कर दे, परन्तु मैं अपने पिताकी प्रतिज्ञासे टससे मस नहीं हो सकता ।

वास्तविकमें जब माता पिता कहीं पुण्यतीर्थमें दुष्कर तप किए रहते हैं तभी उनका पुत्र धार्मिक-समृद्ध-विद्वान् एवं वश्य होता है ।

पुण्यतीर्थे कृतं येन तपः क्वाप्यतिदुष्करम् ॥
तस्य पुत्रो भवेद्वश्यः समृद्धः धार्मिकः सुधीः ॥

राम एक अनुपम बन्धु—भ्राता थे । भरतलालके साथ किये गये सुन्दर-अति लोकोत्तर व्यवहार ही इसके निदर्शन हैं ।

बनवास जाते समय रामने माता कैकेयीसे प्रार्थना की थी कि—

वनभुवि तनुमात्र त्राणमाज्ञापितं मे,
सकलभुवनभारः स्थापितो वत्स मूर्ध्नि ।
इति तु सुकरतायामावयोस्तर्कितायां,
पतति मयि गरीयानम्ब ? ते पक्षपातः ॥

मां ! मुझे तो वनमें केवल अपना शरीर पोषण करने के लिए ही आज्ञा मिली है । परन्तु प्यारे भरतलालके शिरपर तो समस्त भूमण्डल का भार ही लाद दिया गया है । हम दोनोंमें सुकरताके दृष्टिकोणसे आपका मेरे ऊपर अधिक पक्षपात हो रहा है । मेरी मां ! यह तो ठीक नहीं है । राम का यह अपने भाई भरतके प्रति कितना लोकोत्तर सौहार्द एवं अनुपम वात्सल्य है ।

अन्त समयमें लक्ष्मणके प्रयाण कर जानेके असह्य वियोगसे विकल हो उठे राम स्वयं भी निकलकर सरयूमें प्रवेश कर अन्तर्धान हो गये ।

राम एक अच्छे मित्रके रूपमें भी हमारे सामने आते हैं । उनके प्रमुख दो मित्र हुए एक तो निषादराज और दूसरे सुग्रीव । सुग्रीव तो रामके अंतिम प्रयाणको जानकर शीघ्रही अङ्गदको अभिषिक्त करके स्वयं सरयूमें आकर प्रवेश कर गये हैं । कितने सच्चे और अलौकिक मित्र थे ।

राम लोकोत्तर शत्रु भी थे । उनके सौष्ठवका वर्णन मारीचने भी अति सुन्दर रूपमें किया है । एवं रावणके अन्त्येष्टि संस्कारके समय जब विभीषण कुछ अन्यमनस्कसे होते दिखने लगे तो उस समय रामने कहा—कि विभीषण ! यदि तुम रावणका संस्कार नहीं करोगे तो मैं स्वयं अपने हाथों करूँगा । मेरी शत्रुता रावणके मरने तक ही थी अब वह

समाप्त हो चुकी, तुम इसका संस्कार करो नहीं तो स्मरण रहे कि जैसे यह तुम्हारा भाई है वैसे ही मेरा भी।

मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारः ममाप्येष यथातव॥

राम अलौकिक धर्मनिष्ठ थे क्योंकि इसीकी रक्षाके लिये तो भगवान्‌के अवतार ही होते हैं। जब बालिको मारनेके पश्चात् राम उसका राज्य सुग्रीव को देने लगे तभी सुस्पष्ट निर्णय करके घोषित कर दिये थे कि सुग्रीव ? इस राज्यका उत्तराधिकारी अङ्गद ही होंगे तुम्हारा पुत्र नहीं। तथा लंका पर विजय प्राप्त करके उसे भी, अभिषेक कर विभीषणको दे दिये वहां स्वयं पद प्रवेश तक नहीं किये। यही भारतीय संस्कृतकी अनुपम विशेषता है।

राम लोकोत्तर एवं अप्रतिम राजा थे। इसलिये रामके सदृश जिस राष्ट्रमें नीति न हो वह राष्ट्र, राष्ट्र नहीं, और जहां उस नीति या रामका समादर हो वह वन भी, सुन्दर राष्ट्र वन जायेगा।

नहि तद्भविता राष्ट्रं यत्र रामो न भूपतिः।
तद्वनं भविता राष्ट्रं यत्र रामोनिवत्स्यति॥

राम स्वयं अपने भावी राजाओंको सत्पथ पर चलनेकी प्रेरणा दिये हैं। जिसके प्रमाण प्राचीन लेखों तथा शिलालेखोंमें मिलते हैं देखिये—

"भूयो भूयो भाविनो भूमिपाला,
नत्वा नत्वा याचतेरामचन्द्रः॥
सामान्योऽयं धर्मसेतुर्नराणां,
काले काले पालनीयो भवद्भिः॥

वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्य-
मापातमात्रमधुरो विषयोपभोगः ।
प्राणास्तृणाग्र जलविन्दु समा नराणां-
धर्म्मः परं सुहृदहो न विरोधनीयः ॥

हे भावी राजाओ ! वारम्वार प्रणाम करके यह रामचन्द्र आप लोगोंसे याचना करता है कि मानवोंके धर्मरूपी इस सेतुकी आप लोग समय समयपर रक्षा करते रहें । क्योंकि इस पृथ्वीका आधिपत्य वैसे ही अस्थिर और अनिश्चित है जैसे वायुके प्रबल झोंकोमें बादलके किसी टुकड़ेका भविष्य अनिश्चित होता है । विषयोंका उपभोग केवल स्थूल और क्षणिक सुख देनेवाला होता है, मनुष्योंके प्राणोंका भी कोई भरोसा नहीं, वे तो तिनके के अग्रभागमें झूलते हुए जलविन्दुके सदृश ही अस्थिर हैं ! अतः इन सबसे परे परम मित्र धर्मका कभी भी विरोध न करें ।

रामकी प्रतिज्ञा थी—

स्नेहन्दयाञ्च सौख्यञ्च यदि वा जानकीमपि ।
आराधनाय लोकस्य मुञ्चतोनास्ति मे व्यथा ॥

प्रजाकी आराधनाके लिये मुझे स्नेह-दया-सुख और जानकी तक का भी परित्याग करनेमें क्लेश नहीं होगा । कहे ही नहीं उसे कार्यान्वित भी किये ।

राम लोकोत्तर वल्लभ थे । वे प्रजाके बहुमत को ही नहीं, अत्यन्त अल्प मतको भी प्रसन्न रखने के लिए अग्नि शुद्ध-विमलयश वाली परम पतिव्रता सीता तक को वनवासिनी बना दिये ।

सीता

सीताजी स्त्रीत्वकी आदर्श मूर्ति थीं । उनका जन्म गर्भसे नहीं हुआ था इसलिये—अयोनिजा -उर्विजा कही जाती थीं, परन्तु पिता

रूपमें इन्हें अप्रतिम रत्न जनकजी मिले थे। वे विदेह कहे जाते थे। उन्होंने कहा था—

मिथिलायां प्रदग्धायां नमेदहति किञ्चन।

अर्थात्—सारी मिथिलाके जल जानेपर भी मुझे कुछ भी ताप नहीं लग रहा है। वे निष्काम कर्मयोगके सिद्ध थे। सीताजीके स्वयंवर में धनुष तोड़ देनेपर रामने कहा था कि पिताजीके आदेशसे ही परिणय के लिए स्वीकृति दे सकता हूँ। कितना ही सुन्दर आर्यत्वका मापदण्ड है।

वन जानेके समय अपने साथ ही चलनेको उत्सुक होती हुई पतिव्रता सीताको देख बहुत कुछ समझाने बुझानेपर भी जब राम असफल रह गये। तब सीताने कहा नाथ? आप मुझे साथ ले चलनेमें— यदि हिचकेंगे—डरेंगे, तब तो मेरे पिता मिथिलेश विदेह अपने जामाता रामको पुरुष विग्रह अवला ही समझेंगे।

किन्त्वामन्यतवैदेहः पितामे मिथिलाधिपः।
रामं जामातरं प्राप्य स्त्रियं पुरुषविग्रहम्॥ (वा. रा.)

श्रीसीताजीका रामके ऊपर अगाध स्नेह था, अविच्छेद्य सम्बन्ध था। अनन्या राघवेणाहं भास्करेण प्रभा यथा।

"सूर्य और उसकी प्रभाके सदृश मेरा भी रामके साथ अपरिहार्यसम्बन्ध है। राम चाहे दीन राज्यहीन या किसी भी अवस्थामें क्यों न हों किन्तु मेरे लिये तो पूज्य पति ही हैं।

दीनो वा राज्य हीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरुः। (वा.रा.)

लषणलालजीके प्रति उत्कट स्नेह रहते हुए भी एक बार मारीचके वध प्रसङ्गमें उसके शब्दकर्णगोचर होनेपर वहां जानेके लिए लक्ष्मणके प्रति

भी सीताजी का कुछ रोष झलक उठता है। वास्तविकमें दुःख समवायों में भी कैसे धैर्यके साथ अपने कर्तव्य पर दृढ़ रहना चाहिये। इसके लिये सीताजीका जीवन लोकके लिये अनुकरणीय और आदर्श है।

सीताजी बड़ी व्यवहार कुशल थीं। जब रावण हरणकर लिये जा रहा था तब आने पर रामको भी इसकी पता चल जाये इसीलिये अपने आभूषणोंको जहां तहां विखेरती--फेकती गई हैं। एवं लङ्काकी अशोकवाटिकामें भी हनुमान्‌जीकी सुन्दर परीक्षाके अनन्तर ही रामदूतके रूपमें उन्हे स्वीकारकी है।

पंचवटीमें अपनी कुटी पर रामके न रहने पर भी गार्हस्थ्य धर्मके परिपालनार्थ ही यतिवेषमें आये हुये रावणको भिक्षाप्रदान करने चली हैं। क्योंकि रघुकुलकी यही नीति थी—

गुर्वर्थमर्थी श्रुत पारदृश्वा रघोः सकाशादनवाप्यकामम्।
गतो वदान्यान्तरमित्ययं मे मा भूत परीवादनवावतारः॥
(रघुवंश)

अपनी अकिञ्चन अवस्था में भी गुरु दक्षिणाके प्रसङ्गमें आये हुए कौत्स विद्यार्थीके प्रति राजा रघुके हृदयमें ये भाव उठे हैं कि विद्वान् कौत्स अपने गुरुकी दक्षिणाके लिये मेरे पाससे अभीष्ट धनराशि न प्राप्त कर यदि किसी दूसरेका मुंह ताके तब तो मेरे लिये अपमान का यह नया श्रीगणेश हो जायगा।

अपने साथ ही लंकासे ले चलनेकी प्रार्थना करते हुए अञ्जनी कुमारके प्रति सीताजी के उत्तर हैं कि हनुमन्तलाल ! मैं अपनी पतिभक्ति के कारण रामके अतिरिक्त स्वेच्छासे किसी अन्यका शरीरस्पर्श नहीं चाहती। अनन्य पत्नीकी रक्षा का भार पति पर ही होता है।

भर्तुः भक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर ।
नाहं स्प्रष्टुं स्वतोगात्रं इच्छेयं वानरोत्तम ॥ (वा. रा.)

रामके द्वारा अन्तमें सीताजीका परित्याग भी, अल्पमतके गौरव एवं सीताजीके पातिव्रतके महत्वके प्रकाशनार्थ ही हुआ था । पृथ्वीदेवी से सीताजी प्रार्थना की हैं—

मनसा कर्मणा वाचा यदि रामं समर्थये ।
तदा मे माधवी देवी विवरं दातु मर्हति ॥ (वा. रा.)

यदि मैं मन–वचन और कर्मसे रामकी अनन्य सेविका हूं तो भू देवि ! आपमुझे अपने गोदमे ले लें । बस पृथ्वी माताने वैसा ही किया ।

लक्ष्मण

ये तो रामकी छाया--वहिश्चर प्राण एवं दक्षिणहस्त थे । रामके साथ इनका सीमातीत स्नेह था । इनके वियोगके अनन्तर ही रामायण की भी समाप्ति हो जाती है । भरत रामके वियोगमें भी चौदह वर्ष पर्यन्त जीते रह गये, सीता भी वियोग सह ली थीं । परन्तु लक्ष्मण ऐसे नहीं थे, उनके लिये यह असह्य था । रामके साथ लक्ष्मणकी इतनी अनन्यता थी, कि अपनी यज्ञरक्षाके लिये जब विश्वामित्र ऋषि आये और याचनाका विचार किये तब वे केवल रामको ही मांगे थे लक्ष्मणको नहीं । परन्तु ये रामके साथ स्वयं तुरन्त ही इस प्रकार प्रस्थित हो पड़े जैसे शरीरके साथ छाया । इसीलिये अपने राज्याभिषेकके समयमें राम भी लक्ष्मणसे कहे थे कि—

लक्ष्मण ! मया सार्धं प्रशाधित्वं वसुन्धराम् ।

हे लषण ! तुम भी मेरे साथ पृथ्वीके शासनकी व्यवस्था करो ।

शक्ति लगनेसे लक्ष्मणके मूर्छित हो जाने पर तो रामके विलापकी सीमा ही नहीं रह गई ।

नहि मे जीवितेनार्थः सीतया च जयेन वा।
कोहि मे जीवितेनार्थः त्वयि पंचत्वमागते ॥
देशे देशे कलत्राणि देश देशे च बान्धवाः।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः ॥ (वा. रा.)

हे लक्ष्मण ! तुम्हारे जीवित न रहने पर तो मुझे अपने जीवन तथा सीता और लंकाविजयसे भी कोई प्रयोजन नहीं है। प्रत्येक देश-काल-में तो स्त्री एवं सजातीय बन्धु फिर भी मिल सकते हैं। परन्तु ऐसा कोई भी स्थान नहीं जहांपर मरनेके बाद फिर भी सहोदर भाई मिल सके— देख पड़े।

श्री हनुमानजीके साथ भी लक्ष्मणजीके विषयमें सीताजीके वचन हैं कि रामके भाई लषणलालजी मुझसे अत्यन्त प्रिय हैं।

"मत्तः प्रियतरो नित्यं भ्राता रामस्य लक्ष्मणः" (वा. रा.)

रामके साथ लक्ष्मणका अच्छेद्य सम्बन्ध होनेके नाते ही वे रामके सहोदर भ्राता हैं। ये राममें इतने अनन्य थे कि बन प्रयाणके समय अपनी पत्नी उर्मिलासे, बस मैं जा रहा हूं इतने ही शब्दोंके साथ कुछ भी प्रत्युत्तारकी प्रतीक्षा बिना किये ही चल पड़ते हैं। उनके लिये राम की सेवा ही कर्तव्य और धर्म दोनों था। इसीलिये रामके बन जानेकी बातको सुनकर दशरथ प्रभृति सभी स्वजनोंके संहार कर डालने तककी भी बात सोच बैठते हैं।

श्री लक्ष्मणजीकी व्यावहारिक मर्यादा अप्रतिम थी। जब सीता अन्वेषणके समय किष्किन्धामें राम उनके आभूषणों की पहिचान लषण-

लालजीसे कराने लगते हैं तो उनके प्रत्युत्तरके शब्दोंको सुनकर किसी भी सहृदयका हृदय धन्यवाद दिये विना नहीं रह सकता। उन्होंने कहा था—

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरे त्वेव जानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्॥ (वा० रा०)

नाथ! मैं माताजीके केयूर और कुण्डलोंको नहीं पहचान पाता हूं। नित्यप्रति उनके चरणोंकी वन्दना करनेके कारण केवल नूपुरोंको ही पहचान सकता हूं।

अपने अन्तिम परित्यागके समय जब सीताजीने कहा—लषण? मुझे अब भर आंखों देख लो तब जाओ। तब लक्ष्मणजीने उत्तर दिया—

दृष्टपूर्वं न ते रूपं पादौ दृष्टौ तवानघे।
कथमत्र हि पश्यामि रामेण रहितां वने॥ (वा० रा०)

हे पूर्णरूपे! आजतक मैं आपके रूपका दर्शन नहीं किया केवल चरणोंके ही दर्शन किये हैं। तो भला आज रामकी अनुपस्थितिमें इस वनमें कैसे देखूँ। ऐसी प्रार्थना करके और वहांसे चल पड़े हैं।

लक्ष्मणजी बड़े प्रतिभा सम्पन्न थे। पंचवटीमें रामके कतिपय प्रश्नोंके उत्तर बड़े सुन्दर रूपसे दिये हैं। रामने पूछा—

लक्ष्मण!

पुष्पं दृष्ट्वा फलं दृष्ट्वा दृष्ट्वा स्त्रीणां च यौवनम्।
त्रीणि रूपाणि दृष्ट्वैव कस्य नो चलते मनः॥ (वा० रा०)

पुष्प, फल और स्त्रियोंके यौवन इन तीन रूपोंको देखकर किसका मन चलित नहीं होता?

उत्तरमें लक्ष्मणजीने कहा—

शुचि भूतो पिता यस्य माता यस्य पतिव्रता ।
उभाभ्यामेव सम्भूतो तस्य नो चलते मनः ॥
मनोधावति सर्वत्र, मदोन्मत्त गजेन्द्रवत् ।
ज्ञानांकुश समाबुद्धिस्तस्य नो चलते मनः ॥

जिसका पिता पवित्र आत्मा और माता पतिव्रता होती है । उसके पुत्रका मन कभी चलित नहीं हो सकता । मन तो—यद्यपि मदोन्मत्त गजेन्द्रके सदृश सर्वत्र सर्वदा दौड़ता ही रहता है । परन्तु जिसकी बुद्धिपर ज्ञानका अंकुश रहता है, उसका मन कभी भी चंचल नहीं होता ।

प्रसन्नता भरे शब्दोंमें रामने कहा—सौमित्रे ? लक्ष्मण ! इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्न हुए तुम्हारे जैसा नैष्ठिक ब्रह्मचारी समस्त लोकका अभिवन्दनीय है—नमस्कारका पात्र है ।

हे लक्ष्मण महाप्राज्ञ सुमित्रायाश्च नन्दन ।
इक्ष्वाकोश्चकुलोत्पन्न ! ब्रह्मचारिन्नमोनमः ॥

जीवन मात्रमें लक्ष्मण द्वारा रामकी आज्ञाका अपालन केवल दो प्रसङ्गोंमें ही झलकता है और वह भी रामकी लीलाके कारण--भवितव्यता वश । जैसे--

१-मारीचके पुकारनेपर सीताजीके कतिपय शब्दोंके कारण उनकी रक्षा छोड़कर—रामके पास चल देना ।

२-रामायणकी समाप्ति प्रसंगमें—राम और कालकी एकांतिक बातचीतके समय दुर्वासा ऋषिके आ पहुंचनेके कारण शापके डरवश विना आज्ञाके ही रामके पास संदेश देनेके लिए पहुंच जाना ।

भरत

रामके ऊपर लक्ष्मणका साहजिक स्नेह था। जबकि भरतजीका उससे भी बढ़कर—कर्तव्य निष्ठ और सीमातीत धर्मपरायणताके कारण राम और भरतकी निर्लोभताका जाज्वल्यमान एवं अप्रतिम दृष्टांत संसार में अन्यत्र नहीं मिल सकता है।

रामके चरित्रपर भरतजीका अनिवार्य प्रेम और दृढ विश्वास था। इसीलिये ननिहालसे लौटनेपर अपनी मातासे दशरथ द्वारा रामके लिये दिये गये बनवासके प्रसंगको सुनकर उनके हृदयमें आशंकायें हुईं; और उन्हें बस केवल अपने चारित्र्यपर ही मलीनताओंका संशय होने लगा।

भरतके लिये माता कौशल्याके जब ये शब्द कर्णगोचर हुये कि तुम्हें यदि राज्यकी कामना रही हो तो लो, यह निष्कण्टक राज्य मिल गया।

इदं ते राज्यकामस्य लब्धं राज्यमकण्टकम्।

इसपर भरतजीको बड़ा क्लेश हुआ और वे शपथ करने लगे कि यदि माता सचमुच मेरी ऐसी भावना हो तो मैं वशिष्ठ एवं अरुन्धतीकी हत्याके पापका भागी होऊं। वास्तविकमें तो भरतकी विशेषता एवं उनकी मार्मिकताके विशेषज्ञ व्यक्ति दो ही थे। एक तो महर्षि वसिष्ठ और दूसरे राम। अतः इनके हृदयमें भरतके प्रति सर्वदा ही उदात्त भाव बने रहे। भरतजी रामकी पादुकाकी पूजा करते हुए उनके वियोगमें १४ वर्ष तपोमय जीवन व्यतीत किये।

उस कालमें भारतके राज्योंमें तीन बड़े विशिष्ट थे। तीनोंमें भाइयोंके प्रसङ्ग देखने योग्य हैं। १—अयोध्यामें राम, लक्ष्मण तथा

भरत आदि । २—किष्किन्धामें बालि और सुग्रीव । ३—लंकामें रावण और विभीषण आदि ।

विभीषणके प्रति रामसे कहे गये भरत विषयक ये शब्द कितने सुन्दर हैं कि हे तात ! सभी भाई भरतके सदृश नहीं हो सकते ।

न सर्वे भ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमाः ।

राम लङ्का विजयकर अयोध्यामें आनेपर बड़ी उतावलीके साथ भरतसे मिले, और तभी वियोगकी ज्वाला शान्त हुई थी । राम अपने हाथों भरतके संस्कार जटा विमोचन-स्नान-आदि सर्व प्रथम सम्पन्न किये पश्चात् अपने । वस्तुतः भरतके सदृश तो भरत ही हो सकते हैं ।

शत्रुघ्न

लक्ष्मण जिस प्रकार रामके अनुचर थे-रामानुज कहे जाते थे । वैसे ही शत्रुघ्न भी भरतके अनुचर और इसी तरह भरतानुज भी । वैसे तो ये लक्ष्मणके सहोदर भाई थे । परन्तु सहचर भरतका था और इसी लिये प्रथम अभिषेककी चर्चाके समय, भरतके साथ ही ये ननिहालमें थे । वहांसे आनेपर रामके बनवासकी बात सुनकर -कैकेयी और मन्थरा के ऊपर अधिक आवेशमें आकर दण्ड देनेको जब सोचने लगे तब भरतने निवारण किया । इन्होंने लवणासुरको मारकर मथुरा नगरी बसाई है ।

त्रेतायुगमें भगवान् राम आदि चार रूपोंसे व्यक्त हुए हैं । और चारों रूपोंने आत्मश्रेयके चार तत्त्वोंपर प्रकाश डाले हैं । जैसे—

१-रामने माता पिता एवं गुरुके आदेशोंके पालन रूप सामान्य धर्मका प्रकाश किया ।

२-लक्ष्मणने भगवान्के दिव्य विग्रहकी शुश्रूषा (कैंकर्य) कर ।

३-भरतजी रामके साथके शुश्रूणपर हठ न करते हुये उनके वचन पालनको अपना मुख्य धर्म स्वीकार किये हैं।

४--शत्रुघ्न तो भगवान् के भक्त भरत को ही उनसे भी बढ़कर समझे, और सेवा किये हैं। वस्तुतः ये ही आत्मकल्याणके मार्ग हैं।

रामके पुत्र लव और कुश भी वाल्मीकिके आश्रममें पले हुये अति दिव्य संस्कारी एवं शूरवीर और मातृ-पितृ भक्त थे। रामाश्वमेधके प्रसंगमें इन दोनों भाइयोंने लक्ष्मण प्रभृति समस्त भाइयोंके युद्धमें दांत खट्टे कर दिये थे। इनकी दृष्टि तीनों लोकको तृणके समान तूलती थी। तथा इनकी धीरोद्धत गतिसे पृथ्वी नत होती चलती थी। ये कौमारावस्थामें भी अपनी गिरि जैसी गरिमासे ऐसे प्रतीत होते थे कि मानों साक्षात् वीर रस हैं अथवा दर्प।

दृष्टिस्तृणीकृत जगत्त्रयसत्वसारा
धीरोद्धता नमयतीवगतिर्धरित्रीम्।
कौमारकेऽपि गिरिवद्गुरुतांदधानो
वीरो रसः किमयमेत्युतदर्प एव॥

बसिष्ठः

पूर्वकालसे लेकर आजतक मानवता एवं संस्कृतिका रक्षाका एक समाज विशेष रूपसे करता चला आ रहा है। वह है ब्राह्मणवर्ग। इसी ब्राह्मण वर्गके ऊपर रामराज्य भी स्थापित था। उस समाजके प्रमुख पात्र वसिष्ठ ऋषि थे। इसलिये मानवता और संस्कृति संक्षरक्षणके लिये ब्राह्मण वर्ग तथा उनके ब्राह्मत्वकी रक्षा, उनकी शिक्षा-दीक्षा नितान्त आवश्यक है। पहले समय में सत्ता एवं सम्पत्तिको प्राप्त कर क्षत्रिय समुद्धत हो गये थे। यह देखकर परशुरामजी उन्हें सर्वथा उन्मूलन-करना प्रारम्भ किये। परन्तु कश्यपने उन्हें समझा बुझाकर रोका, अन-

न्तर वे सारी पृथ्वी कश्यप प्रभृतिको दे दिये । वे भी इस भारको अपने ब्राह्मणत्वका अन्तराय समझकर वैश्योंसे व्यवस्था चलाना चाहे परन्तु असफल रहे । अस्तु राज्य व्यवस्थामें ब्राह्मणोंका ब्राह्मणत्व-ब्रह्मतेज हमेशा से टेक लगाता चला आरहा है । वसिष्ठके उस ब्रह्मतेजके समक्ष राजर्षि विश्वामित्र नत मस्तक होकर कह दिए कि-क्षत्रियोंके बलको धिक्कार है ब्रह्मतेजका ही बल बल है ।

"धिक् बलं क्षत्रियबलं ब्रह्मतेजो बलंबलम् "

वसिष्ठ और विश्वामित्रका नन्दिनीके विषयमें युद्ध हुआ था । जिसमें विश्वामित्रको हार खानी पड़ी थी । कुछ लोग तो इन्द्र और अहिल्याके वृत्तके सदृश इसको भी रूपक कहते हैं ।

"इन्द्रः अहल्यायै जारः" अर्थात्—इन्द्र (सूर्य) अहः—दिनको लीन कर लेनेवाली अहल्या अर्थात् रात्रिके लिए जार है (जीर्ण कर देता है)। यह है रूपकका अर्थ ।

वे कहते हैं कि कश्यपने परशुरामसे प्राप्त पृथ्वीके राज्यको न्या-युषके पुत्र सत्यव्रतको दे दिया परन्तु वह इस कार्यमें अदक्ष निकला । इसलिए वसिष्ठने शासनाभाववाद की स्थापना की । विश्वामित्र साम्राज्य वादी थे । वे वसिष्ठकी राज्य पद्धतिपर मुग्ध हो गये । फिर नन्दिनी—अर्थात् पृथ्वी--वसिष्ठसे अधिष्ठित राज्य भूमि के लिये विश्वामित्र संग्राम किए किन्तु वहांकी प्रजाओंकी संगठन शक्तिसे उन्हें नीचा देखना पड़ा । यह है इस कथाका रूपक । अस्तु कुछ भी हो परन्तु यह ध्रुव सत्य है कि उस समय अयोध्याका राज्य क्रम वसिष्ठके संकेतपर अवश्य ही चलता था । वसिष्ठके परामर्शसे ही विश्वामित्र अपनी यज्ञ-रक्षाके प्रसंगमें राम लक्ष्मण को ले जाकर और शिक्षा-दीक्षाकी कलासे अत्यधिक सम्पन्न किये हैं । वसिष्ठके ब्राह्मणत्वसे सुव्यवस्थित एवं आदर्श रामसे अधिष्ठित राम-

राज्य का स्वप्न आज भी लोग देखते चल रहे हैं। देखें भगवान् राम वह सुप्रभात कब दिखायेंगे। किन्तु—राम राज्य उतारनेके पहिले- ब्राह्मण और ब्राह्मणत्वको हमें फिर यथावस्थित रूपमें प्रतिष्ठित करना होगा।

गीता तथा रामायण हमे समस्त चर और अचर प्राणियों में बड़े-छोटे, स्थूल सूक्ष्म, वरिष्ठ-कनिष्ठ सभीमें ईश्वरको देखकर आनन्दमें विभोर हो प्रेम करनेका पाठ पढाते हैं, और तभी पूर्ण आनन्द मिल सकता है। यदि हम गीताके गोपाल कृष्णके जीवनसे गो माताको पृथक् कर दें तो फिर अवशेष ही क्या रह जाता है। ठीक इसी प्रकार यदि हम रामायणके—अपने रामके जीवनसे—राक्षसों, वानरोंको हटा लें तों फिर कोरे रामका महत्व ही क्या। अतः रामायण और राम हमें नर-वानर, पशु-पक्षी, सभीसे मैत्री-प्रेम एवं सेवाका पाठ पढाते हैं।

इसलिये आइये—रामके कृपा कटाक्षसे अनुप्राणित कुछ ऐसे भी भाग्यशील पात्रोंका दर्शन कर लें।

विभीषण

ये भगवानके प्रपन्न भक्त थे। लोकके शुभ चिन्तक थे। बहुत समयसे आजतक लोग इन्हें स्वार्थान्ध और कुल भेदक कहते आरहे हैं। परन्तु उनकी ए धारणायें भ्रान्त हैं। महर्षि वाल्मीकिने कितना स्पष्ट कहा है।

" विभीषणस्तु धर्मात्मा, नित्यं धर्मं व्यवस्थितः "

विभीषण बड़े ही धर्मात्मा और धर्मधुरीण हैं।

ये रावणके स्त्री हरण आदि दुराचार-अत्याचारसे सन्तप्त होकर अनेक बार उसे सन्मार्ग पर लानेका प्रयास करते रहे हैं। इन्होंने कहा था—रावण ! यह तुम्हारी प्राणिहिंसा आदि घातक क्रियायें और अवैध आचार-स्वेच्छाचार तुम्हारे कुल और यशको नष्ट कर देंगे।

"ईदृशैस्त्वं समाचारैः यशोऽर्थ कुलनाशनैः ।"

विभीषण रावणके राज्यको सुरक्षित रखनेमें प्रयत्नशील रहा करते थे । इसलिये रावणकी सभामें राजदूत हनुमानके वधके प्रस्तावका डटकर विरोध किये थे । एवं सहस्रों बार रावणकों समझाने पर भी सफल न हो तथा अपमानित होकर भी राक्षस राष्ट्रके कल्याणकी भावना को ही मनमें धारण कर भगवान रामके शरणागत हुए हैं । रावणका युद्ध मानवता और पशुताका युद्ध था, वह दो राष्ट्रोंका युद्ध नहीं था । इसी लिये मानवतावादी विभीषण रामकी शरण हुए ।

रावणको तो हम कभी भी नहीं भूल सकते । रामायण और रामके साथ इस पात्रका अविनाभाव (अटूट) सम्बन्ध है । राम और रावण–देव और दानव, सत्व वृत्ति और इतर वृत्तियों के युद्ध संघर्ष तो सर्वदा चलते ही रहते हैं और चलते रहेंगे ।

दशेन्द्रियाननं घोरं यो मनो रजनीचरम् ।
विवेक शरजालेन क्षयं नयतियोगिनाम् ॥

दश इंद्रिय रूप मुखवाला--अपना मन ही निशाचर रावण है । वह आत्माका संवरण करता रहता है । भक्तरक्षक परमात्मा उसे विवेक के वाणोंसे मारकर और आत्माका उद्धार करते हैं ।

दर्पोदग्रदशेन्द्रियानन मनो नक्त चराधिष्ठिते,
देहेऽस्मिन् भवसिन्धुना परिगतः दीनां दशामास्थितः ।
अद्यत्वे हनुमत्समेन गुरुणा प्रख्यापितार्थः पुमान्,
लंकारुद्धविदेहराजतनया न्यायेन लालप्यते ॥

काम, क्रोध आदि निशाचरोंसे अधिष्ठित, तथा जन्म मरण रूप समुद्रसे परवेष्टित इस लंका रूप शरीरमें रहनेवाला मन ही रावण है ।

अहंकार पूर्ण हो विषयों की ओर दौड़ने वाली दशों इन्द्रियां ही इस रावण के दश मुख हैं। वह अपनी वासनाओं से दीन एवं शिथिल बनकर फिर भी वासना सिद्धि के लिये आत्मा की शक्ति और विशुद्ध बुद्धि को अपहृत कर लेता है। तब पुरुष-आत्मा इस अपनी करुण कथा को हनुमान् के सदृश गुरु के द्वारा भगवान् के चरणों में निवेदित करता है। और तब भगवान् न्यायोचित मार्गसे शरीर के लंका में अवरुद्ध नीरुप विदेहराज आत्माकी शक्ति बुद्धि को विमुक्त कर सुखी कर देते हैं।

सुग्रीव

इनका जन्म वानर जातिमें था। वाली वानर इनका पितृव्य भ्राता था। वाली द्वारा अनुचित रूपसे निकाले जाने के कारण सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वतपर रहा करते थे। शाप के कारण वालि वहां नहीं जा सकता था। उसी जगह अपने मन्त्री हनुमान के साथ श्रीरामचन्द्र का दर्शन प्राप्त किये। और तब अग्निदेवको साक्षी करके रामके साथ मित्रता हुई। आज तो कथञ्चित विवाह के अवसर पर ही अग्निदेवका प्रयोजन दृष्टिगोचर होता है, मैत्री इत्यादिके विषयमें बस सिग्रेट ही पर्याप्त है। यद्यपि सुग्रीव राम के सखा थे तथापि उनके आचरण-व्यवहार दास्य भाव के थे। उन्होंने रावण के समक्ष अपने परिचय देनेके प्रसङ्गमें स्वयं कहा है कि हे राक्षस! मैं लोकेश्वर रामका सखा एवं दास हूं।

"लोकनाथस्य रामस्य सखा दासोऽस्मि राक्षस।"

भरत भी सुग्रीव के लिये कहे हैं कि तुम मेरे चारों भाइयों के अतिरिक्त पाचवें भाई हो।

"त्वमस्माकं चतुर्णां वै भ्राता सुग्रीव पञ्चमः ।"

राम और सुग्रीवकी मैत्रीके विघातार्थ रावण भी प्रयास किया था। परन्तु असफल रह गया। सुग्रीव अति कृतज्ञ व्यक्ति थे। वे वर्षा ऋतु के अवसान होते ही सीताके अन्वेषणका प्रयास प्रारम्भ कर चुके थे। परन्तु इस बातकी अनभिज्ञता से ही लक्ष्मण इनके ऊपर कुछ रोषान्वित हुए थे।

हनुमान्

श्रीराम के कुटुम्बमें हनुमान् ही एक ऐसे पात्र हैं, जिनका पूजन रामके साथ ही साथ राम मन्दिरों में तो होता ही आ रहा है, परन्तु उनके लिये स्वतंत्र मंदिर का भी निर्माण कर लोग उनकी उपासना करते आ रहे हैं।

भगवान् रामकी कितनी पवित्र धारणा हनुमान के विषयमें है उन्होंने स्वयं कहा है कि—हनुमानमें शौर्य, दाक्ष्य, बल, धैर्य, बुद्धिमत्ता, नीतिसाधन तथा विक्रम और प्रभाव इन सभी तत्वों का निवास है। मैं आपसे इतना अधिक उपकृत हूँ कि उन अनन्त उपकारोंके बदले अपने प्राणोंको भी देकर पूर्ण नहीं कर सकता हूँ।

शौर्यं दाक्ष्यं बलं धैर्यं प्राज्ञता नयसाधनम ।
विक्रमश्च प्रभावश्च हनूमति कृतालयः ॥
"एकैकस्योपकारस्य प्राणान् दास्यामिते कपे"

रामने हनुमानको तो पुरुषोत्तम तक की उपाधिसे विभूषित कर दिया है। उन्होंने कहा है कि अपने स्वामी द्वारा अति दुष्कर कार्यमें नियुक्त किया हुआ सेवक अति अनुरागपूर्वक यदि उस कार्यको सम्पन्न करता है तो शास्त्र उसे पुरुषोत्तम कहते हैं।

यो हि भृत्यो नियुक्तः सन् भर्ता कर्मणि दुष्करे ।
कुर्यात्तदनुरागेण तमाहुः पुरुषोत्तमम् ॥

सीता का भी हनुमान्में अधिक सुस्नेह था । लंका विजय कर अयोध्यामें आनेपर पुरस्कार वितरणके समय उन्होंने हनुमानको अपना कण्ठहार ही दे दी हैं । हनुमान जन्म के अनन्तर ही सूर्यको निगल गये थे । इन्द्रने इन्हें वज्रसे मारा था । वायु देवताको इससे बड़ा रोष हुआ, सभी देवता वायुदेवको आकर सुप्रसन्न किये और हनुमान्के लिये अच्छे २ वरदान दिये । वरदान प्राप्तकर प्रमत्त बने हनुमान ऋषियों के साथ प्रमाद करने लगे । उन्होंने इन्हे शाप दिया कि तुम्हें अपनी शक्ति विस्मृत हो जायगी और अशक्त बन जावोगे । जब कोई तुम्हें तुम्हारी शक्तिका स्मरण दिलायेगा तब फिर सशक्त हो जावोगे यह कार्य समुद्र पार करने के समय जाम्बवान् ने सम्पन्न किया । तब तो फिर—

मनोजवं मारुततुल्यवेगं, जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम् ।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शरणं प्रपद्ये ॥

मन और वायुके सदृश वेगवान् , जितेन्द्रिय और महाबुद्धिमान् वायुपुत्र वानर सेना के सेनापति श्रीरामदूत हनुमान् का मैं शरणागत हूं ऐसे स्तुत्य होगये ।

ये सबल और बुद्धिवरिष्ठ दोनों ही थे । इन गुणों का परिचय ऋष्यमूक के सन्निकट राम के वार्तालाप के प्रसंग में प्राप्त होता है । किष्किन्धा में सुग्रीव के प्रधान मन्त्री थे । अंगद और सुग्रीवमें राज्य विभाग न होने देकर बड़ी बुद्धिमत्ता के साथ एकता स्थापित किये थे । विभीषण की शरणागति के समय राम को भी अतिसुन्दर सलाह दिये हैं । समुद्र लंघन के समय इनके कर्मयोग—बुद्धिमत्ता और निर्भीकता

आदि के परीक्षण विविध पात्रों द्वारा किये जाने पर भी ये सविधिरूप से उत्तीर्ण हुए हैं। १–नागमाता सुरसा २–मैनाक पर्वत ३–सिंहिका राक्षसी और लंकिनी ये सभी परीक्षक थे और परीक्ष्य अकेले हनुमान। भक्त विभीषण की सहायता से अशोक वाटिकामें जाकर इन्होंने देखा कि रावण की भर्त्सनाओं एवं दुर्व्यवहारों से ऊबकर सीता आत्मघात करना चाहती हैं। हनुमानने सोचा कि यदि मैं मधुर शब्दोंसे बोलता हूं तो सीता मुझे रावण समझ डरेंगी और उच्चस्वरसे बोलनेसे राक्षस-गण आ पहुँचेंगे। परन्तु वे अपनी बुद्धिवरिष्ठतासे अति सुमधुर शब्दों द्वारा इक्ष्वाकुकुल का वर्णन करके एवं शनैः शनैः विश्वस्त बनके तब प्रकट होकर भगवत्सन्देश निवेदन आदि कृत्य किये हैं।

सीताका अन्वेषण करने, तथा उन्हें देखने के लिये, हनुमान लंकामें गये थे वह कार्य सम्पन्नकर जब रामके पास गये तो वे—सीता दृष्टामया राम ? ऐसा न कहकर—दृष्टा सीता मया राम ! इस शब्दावलीमें बोले हैं। इसका भी कारण यही था कि यदि प्रथम सीता शब्दका उच्चारण करते तो सम्भवतः रामके हृदयमें उनके अस्तित्व, अनस्तित्वकी और भी आशंकाएँ उठने लगतीं। इसीलिये उन सबके निराकरणार्थ 'दृष्टा' शब्द प्रथम बोलकर ही तब सीता शब्द बोले हैं। यही वचनचातुरी है।

हनुमानको स्वयं अपने पर संयमनियम पर विश्वास था। वे कह रहे हैं कि मैं लंकाके रावणकी स्त्रियोंको सर्वतोभावेन देखा, परन्तु किञ्चिन्मात्रभी मनोविकार नहीं हुआ।

कामं दृष्टा मयासर्वा विश्वस्ताः रावणस्त्रियः।
न तु मे मनसा किञ्चित्वैकृत्यमुपपद्यते॥

मैं कोशलेन्द्रका दास हूं इस प्रकार "दासोऽहं कोशलेन्द्रस्य" कहते हुए अपनी दासताका सगर्व उद्घोष करते रहते थे।

राम के समय की अर्थ-नीति

भारतीय पद्धति के अनुसार शक्ति, सम्पत्ति उद्योग, भूमि तथा उनके द्वारा प्राप्त आय——सब ईश्वर की वस्तु मानी जाती है। जड़-चेतनात्मक समष्टि एवं व्यष्टि जगत् का परस्पर अनिवार्य उपकार्त उपकारक भाव सम्बन्ध है। केवल धन भूमि आदि ही नहीं व्यक्ति का सर्वस्व समष्टि या समाजके हितार्थ है। इसी प्रकार समष्टिका उपयोग व्यष्टि या व्यक्तिके जीवनमें भी ओतप्रोत है। शास्त्रोंमें आय के पांच भागोंकी व्यवस्था की है। १—धर्मार्थ २—यशप्राप्तिके लिये ३—मूल सम्पत्तिके संरक्षण तथा परिवर्धनके लिये ४—जीवनयात्रा निर्वाहार्थ ५—श्रमिक-कर्षक पोस्यवर्ग-आश्रित एवं कर्मकरोंके स्वास्थ्य शिक्षण आदि के लिये।

धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च।
पञ्चधा विभजन्वित्तमिहामुत्र च मोदते॥ (श्रीमद्भागवत)

इस प्रकार इन पांच भागोंमें साढे तीन भागसे कुछ अधिक हो धन राष्ट्र हितार्थ रखा गया है। भारतीय शास्त्रानुसार आवश्यक जीवनोपयोगी अंशसे अधिक धनसे लोभ और स्वत्त्वाभिमानसे रखना दण्डय कोटि में माना गया है——

यावद्भ्रियेत जठरन्तावत्स्वं हि देहिनाम्।
अधिकं योऽभिन्मयेत सस्तेनो दण्डमर्हति॥

इसी प्रकार जिसके पास तीन वर्ष के लिये जीवन निर्वाहार्थ धन हो उसे अवशेष धनसे "ज्योतिष्टोम" यज्ञ कर डालनेके लिये मनुका आदेश है।

यस्य त्रैवार्षिकं वित्तं पर्याप्तम्भृत्यवृत्तये।
अधिकं वापि विद्येत स सोमम्पातुमर्हति॥

भारतवर्षमें तो सर्वस्व दान दे देनेके भी उदाहरणरहैं। रघु जैसे चक्रवर्ती सम्राटके यहां "विश्वजित्" यज्ञके बाद मिट्टीके पात्र बच रहे थे।

"वैदेही च महाभागा सौमङ्गल्यावशेषिता" (श्रीमद्भागवत) सीताजी के शरीर पर अलङ्कारके नामपर केवल मङ्गल सूत रह गया था। इस प्रकार उपर्युक्त दो भागोंके व्यय तो धार्मिक-सामाजिक और राष्ट्रिय हितोंके ही लिये हुए।

वस्तुतः सीसरा भाग भी राष्ट्र हितके लिये ही है। क्योंकि जैसे सरकारी कोषकी सम्पत्ति संकटकालमें राष्ट्र हितके काममें आती है वैसे ही वैयक्तिक कोषकी सम्पत्ति भी आ सकेगी। इस प्रकार मूल सम्पत्ति और उसकी रक्षा तथा अभिवृद्धिके काममें लगनेवाला भाग भी राष्ट्रार्थ ही होता है।

व्यक्तियोंके समुदायका ही समाज तथा राष्ट्र होता है। अतः व्यक्तिके स्वस्थ-समृद्ध एवं प्रसन्न रहने पर राष्ट्र सुतरां स्वस्थ-समृद्ध तथा प्रसन्न रहेगा। अतः भारतीय आर्यनीति व्यक्तिगत आर्थिक स्वतन्त्रताकी सुरक्षा पर अधिक बल देती है। यहां देनेवाले कहते थे—लो, लो, लेना पड़ेगा। लेनेवाला कहता था—हम नहीं लेंगे, नहीं लेंगे। तैत्तिरीयोपनिषद्का भी कथन है कि "श्रद्धयादेयमश्रद्धयादेयंह्रियादेयम्भियादेयम्"—"दानश्रद्धासे दे, श्रद्धा न हो तो बिना श्रद्धाके ही दे। अथवा लोक लाजसे ही दे, डरसे दे, किसी भी रूपमें दे, पर दे अवश्य। लेनेवालेको भी शास्त्रका आदेश है कि दान लेनेकी स्थितिमें होनेपर भी भरसक उससे बचनेका प्रयत्न करें।

"प्रतिग्रहसमर्थोऽपि प्रसङ्गंतत्र वर्जयेत्"

इससे प्राचीन कालमें देनेवाला सदा देनेको प्रयत्नशील रहता और लेनेवाला सदा उससे बचा करता था उस समय दानमें, पुरस्कारमें, समाज एवं राष्ट्र सेवाके लिये कठोर त्याग-बलिदान करने पर प्राप्त-अथवा-पैतृक सम्पत्तिमेंसे जीवानार्थ प्राप्त, एवं अपनी न्यायपूर्वगाढ़ी शक्तिसे प्राप्त द्रव्य द्वारा खरीदी हुई वस्तु, हड़पी नहीं जाती थी। उन-पर उनका स्वाम्य तथा अधिकार वैध था।

" सप्त वित्तागमा धर्म्यादायोलाभःक्रयोजयः।
प्रयोगः कर्मयोगश्च सत्प्रतिग्रह एवच ॥

मनु ने धर्मकी सात प्रकारकी प्राप्ति धर्मसम्मत बतलायी है। १—परम्परागत उत्तराधिकार २—निधि आदिका लाभ ३—क्रय ४—विजय ५—न्याय्यवृद्धि ६—कृषिवाणिज्य आदिसे प्राप्ति तथा ७—शास्त्र सम्मतदान।

शरीरके किसी अति क्षीण अङ्गकी रक्षा के लिये अन्य पुष्ट अङ्गसे रक्त लेना भी जैसे कभी अनिवार्य्य हो जाता है, वैसेही किसी एक वर्ग के रक्षार्थ अन्य वर्गकी सहायता लेनेकी भी शास्त्राज्ञा है। परन्तु इससे भी जैसे एक अङ्गकी पुष्टि होनेके साथ दूसरे अङ्गके नष्ट न हो जानेपर ध्यान देना आवश्यक होता है, वैसे ही एक वर्ग के लिये दूसरे वर्ग की सहायताके विषयमें भी समझनेको व्यवस्था है।

भारतीय अर्थ नीति-शैशवसे ही यह पाठ पढ़ाती है कि अन्यका अन्न अथवा अन्य का धन मार्गमें मिल जाय या घरपर ही मिल जाये तो उसके दिये बिना नहीं लेना, यही सत्पुरुषका लक्षण है।

परान्नं पर द्रव्यं वा पथि वा यदि वा गृहे।
अदत्तं नैव गृह्णीयादेतद्‌ ब्राह्मणलक्षणम् ॥

अति वैशम्यके ही समान-अतिसाम्यकी प्रक्रिया—दूसरेकी सुख सामग्री-ईर्ष्या और डाहवस हड़प लेनेकी भावनायें भारतीय संस्कारोंके प्रतिकूल और सर्वथा आसुरी हैं।

रामके समयमें—उस राज्यको अर्थ व्यवस्थामें वर्णाश्रम व्यवस्था अत्यन्त आवश्यक थी। इस व्यवस्थाके द्वारा अयोग्य-आर्थिक स्पर्धाके लिये अवसर ही नहीं रह जाता। इससे व्यक्तियोंके योग क्षेम तथा आत्मविश्वास उत्पन्न होते हैं। उस कालमें व्यवसायका निश्चय जन्मसे ही होजाता था। वह भी भृत्य कर्मके लिये नहीं परोपकारकी भावनासे ही। अर्थ शास्त्रका शिक्षण प्रत्येक घरमें प्रचलित था और जीवनका चतुर्थांश ही इसके उपार्जनमें लगाया जाता था। आज तो सारा जीवन ही-अर्थ और कामके पीछे दौड़ता रहता है तब भी अपूर्णता ही बढ़ती जा रही है।

उस समय सभीके व्यवसायोंके प्राप्तिकी सुव्यवस्था थी एवं योग्यताके अनुसार ही व्यवसायकी व्यवस्था। व्यवसायार्थ शिक्षण पद्धति-अशुल्क थी और आवश्यकतानुसार ही उत्पादन किये जाते थे। आज तो वृत्तियोंके सांकर्य हो जानेके कारण उत्तरोत्तर बेकारी बढ़ती जारही है। पहले समयके लोगोंको धनके स्वामित्वका अहङ्कार नहीं था—वे अपनेको उसके ट्रस्टी समझकर उचित विनियोग पर ही ध्यान देते थे।

ज्ञानवृद्धास्तपोवृद्धाः योगवृद्धास्तथापरे।
ते सर्वे धनवृद्धानां द्वारि तिष्ठन्ति किङ्कराः॥
अलब्धं चैव लिप्सेत् लब्धं रक्षेदवक्षपात्।
रक्षितं वर्धयेत् सम्यक् वृद्धं तीर्थेषु निक्षिपेत्॥

ज्ञान-तप-योग और सभी कार्योंमें धन वृद्धोंके साहाय्यका अति महत्व होनेके कारण अप्राप्त धनको प्राप्त करनेकी इच्छा और प्रयास

करता चले। प्राप्त होजाने पर उसे हानिसे बचाता चले। रक्षित द्रव्यको और बढ़ानेका प्रयत्न करता रहे तथा वृद्ध द्रव्यको तीर्थ एवं सत्कर्मोंमें विनियोग करे, यही भारतीय आर्यनीति है—राम राज्यका आदर्श है।

रामकालीन समाज

इस प्रसंगमें यह अति विचारणीय विषय है कि समाज की व्यवस्था अर्थ प्रधान होनी ठीक है या काम प्रधान अथवा धर्म प्रधान। १—समाज व्यवस्थामें अर्थ प्राधान्य होजाना यह नितान्त अनुचित मत है। इस विषयमें पाश्चात्य समाजशास्त्रवेत्ता डा० आर.आर. महोदयने भी स्पष्टीकरण किया है कि न तो अर्थ प्रधान समाज जीवित ही रह सकता है और न निर्धन समाज मर ही सकता है। उन्होंने कहा है—कि उत्तर पश्चिम यूरूपमें लोग पूर्वकी अपेक्षा अधिक श्रीमन्त थे, परन्तु आज उनकी संख्याका प्रति दिन ह्रास होता जा रहा है।। इसी प्रकार "मोरीशियस" देशमें भी आजके लगभग सौ वर्ष पूर्व-तृतीयांश लोग धनिक वर्गके फेंच थे और दो तिहाई निर्धन भारतीय थे। परन्तु इस समय सभी लोग भारतीय सदृश ही हो गये हैं। इसी प्रकार सभी जगह द्रव्य और वंश नाशका समन्वय ही दृष्टिगोचर होता है।

इसी प्रकार वासना के ऊपर अति महत्व देनेवाली-काम प्रधान समाज व्यवस्था भी—चिर स्थाई नहीं हो सकती। केवल धर्म प्रधान व्यवस्था सर्वस्थायी और हितावह है और वही रामराज्य में थी। समाज रचनाके ऊपर राजसत्ताका नहीं अपितु धर्म सत्ताकाही नियन्त्रण कल्याणप्रद होता है। देखिये लोकमें कितनी राज सत्तायें आई और विक्षुप्त होगई परन्तु धर्मसत्ता नियमपूर्वक किसी न किसी रूपमें सर्वत्र ही प्रचलित है। जैसे योरुपमें भी लगभग दो सहस्र वर्षोंसे क्रिश्चियन धर्म-

सत्ता चाहे वह जैसी भी हो, चली आरही है। रामराज्यका उद्घोष है कि अति हितावह धर्मप्रधान समाज व्यवस्था भी विना वर्णाश्रम व्यवस्थाके टिक ही नहीं सकती। वर्णाश्रम धर्मके आधार, शास्त्र और वेद हैं। अवैदिक धर्म-अल्पकालके लिये भले ही फूले-फले दिखाई पड़े परन्तु वे शाश्वत् नहीं हो सकते। देखिये भारतवर्ष का ही जन्मा हुआ बौद्धधर्म अपनी जन्मस्थली भारत भूमिसे ही विदा हो चुका है,— निकाल दिया गया है। भले ही वह अल्पज्ञतासे कहीं प्रसार पा रहा हो परन्तु कबतक के लिये......यही दशा सभी अवैदिक धर्मों की समझिये।

धर्मप्रधान समाज की रचनामें वृत्तिका सांकर्य नहीं आ सकता और इसलिये बेकारी भी नहीं होती—कहीं अपवाद रूपमें ही दिखाई देगी।

इस व्यवस्थामें केवल लाभ नहीं देखा जाता कि उसी पर दौड़ पड़े। श्रीकृष्ण कहते हैं कि कौन्तेय ! सदोष दिखनेपर भी सहज कर्मोंका परित्याग उचित नहीं।

" सहजं कर्म कौन्तेय सदोषमपिनत्यजेत्।

इसी प्रकार शास्त्रोक्त विवाह की व्यवस्था भी रामराज्यका आदर्श है। जिसे आजके भी वैज्ञानिक मानने लगे हैं। जनकपुरके स्वयंवरमें राम, धनुष तोड़कर भी, सीताकी स्वीकृतिमें—विवाहमें पिता दशरथके अनुमतिकी प्रतीक्षा किये हैं। ये ही हैं रामके आदर्श। क्या ये भाव आजके कुत्तोंकी छुछेरी वासनाओंमें मिल सकते हैं ?

बालकाण्डके छठें सर्गमें महर्षि वाल्मीकिने अयोध्याका वर्णन अति सुन्दर रूपमें किया है—अयोध्या नगरीमें सभी लोग-धर्मात्मा तथा बहुश्रुत थे। अपनी २ सम्पत्तिसे सन्तुष्ट रहा करते थे, निर्लोभ एवं सत्यवादी थे।

तस्मिन् पुरवरे हृष्टाः धर्मात्मानो बहुश्रुताः।
नरास्तुष्टाः धनैस्स्वैस्स्वैरलुब्धाः सत्यवादिनः॥

उस समय किसीको पुत्र मरण देखनेका अवसर नहीं आता था।

" नपुत्रमरणं केचित् द्रक्ष्यन्ति पुरुषाःक्वचित् "

किन्तु आज तो पुत्र मरते जाते हैं और पिता दीर्घायु बना बैठा रहता है।

" पुत्राः म्रियन्ते जनकश्चिरायुः "

रामराज्यके समाजमें लोग कर्तव्यनिष्ठ होते थे, अधिकार परायण नहीं। अधिकारको पदाभिमानमें अशान्तिका निवास रहता है। राम और भरतके बोचमें राज्याधिकार-दोनों तरफसे गेंद जैसा ठुकराया जारहा था। कितना त्याग और कितना निर्लोभ। यही है कर्तव्य निष्ठा।

इस प्रणालीमें-धार्मिक सत्ता-अनुवंश विचार-वर्णाश्रम व्यवस्था और लोकहित की प्रधानतायें रहती हैं।

रामके शासन सूत्र

सुख, शान्ति, और आनन्दके इतने व्यापक प्रसारके लिये उतनी ही व्यापक और दृढतम आधार भूमि भी चाहिये। स्थूल भौतिकवादमें इतनी क्षमता नहीं कि वह ऐसी भव्य व्यवस्थाओंको अंकुरित कर सके। इसके लिये सनातन सांस्कृतिक आधार ही चाहिये।

भारतीय दार्शनिकोंके बहुमतके अनुसार यह जगत् जड़ परमाणुओं एवं विद्युत्कणों अथवा जड़ प्रकृति मात्रसे नहीं बना है। जब रेलतार आदि बनानेके लिये किसी बुद्धि एंव मस्तिष्क सम्पन्न चेतन

मनुष्यकी कल्पना की जाती है तब फिर आकाश-वायु-सूर्य-चन्द्र भूमण्डल-मनुष्य तथा उसके मस्तिष्क-बुद्धि-शरीर-इन्द्रिय आदि विविध विचित्रता पूर्ण प्रपञ्चका बनाने वाला भी अवश्य ही कोई न कोई चेतन और सर्वज्ञ होना चाहिये। भारतीयों की मान्यताके अनुसार अनन्त ब्रह्माण्डोंका कोई एक नियन्ता है जो सर्वज्ञ-सर्वशक्तिमान् और लोक मर्यादा का संस्थापक है। वही स्रष्टा अपनी सृष्टि का परिपालन भी करता है। जब एक अंगुल भी भूमि, एक भी वृक्ष, एक भी वस्तु बिना स्वामीके नहीं, तब इतना सारा प्राकृत प्रपञ्च विना स्वामीके सम्भव है। एक भी दीप विना किसी स्वामीके नहीं होता, तब सूर्य-चन्द्र-नक्षत्र प्रभृतिके लिये भी कोई विश्वव्यापक स्वामी—शासक होना चाहिये। फिर निग्रह और अनुग्रह के लिये उस शासक का विधान भी होना चाहिये। चब किसी छोटे से राष्ट्रका भी शासन चलाने के लिये विधान अपेक्षित होता है तब इतनी विराट् सृष्टि का शासन बिना विधानके कैसे होता। जैसे अनित्य नियम्य—नियन्ताके बीच अनित्य विधान होता है वैसे ही सनातन नियम्य—नियन्ताके बीच विधान भी सनातन ही हो सकता है। अधिकांश भारतीय विचारकोंके दृष्टि कोंण से वह सनातन विधान "वेद" है। और जगत्के नियन्ता—शासक हैं वेही हमारे राम या ईश्वर। ईश्वर इसी वेद विधानके द्वारा अनन्त-जीवोंके अनन्त जन्म-कर्मके फलों की यथोचित व्यवस्था करते हैं। अतएव जबतक ईश्वरकी मृत्यु न हो जाय, या पराजित न हो जाय अथवा वह अवकाश न ग्रहण कर ले या अपनी भूल स्वीकार करके अन्य विधान निर्माण की स्वीकृति न देदे, तबतक उस सनातन विधान में किसी भी प्रकारका परिवर्तन मान्य नहीं हो सकता।

सर्व साधारण शासक भी ईश्वरका प्रतिनिधि होता है। अतः उसके भी शासन सूत्र—रामराज्यके ही शासन सूत्र होने चाहिये। राम-

राज्यके नामान्तर-धर्मराज्य और ईश्वर राज्य भी हैं । राजतन्त्र-व्यवस्थाके पहिले-सत्ययुगमें कुछ दिनतक अराजतन्त्र भी था । उस समय राज्य-राजा-दण्य-दाण्डिक आदि कुछ भी नहीं थे, धर्मके द्वारा ही सारी प्रजायें परस्पर रक्षा करती रहती थीं। परन्तु जैसे-बड़े जल-चर-छोटे जल चरोंको मारकर खाने लगते है, उसी प्रकार मानव समाजमें भी जब "मात्स्यन्याय" फैलने लगा और समाज-अव्यवस्थित हो, त्राहि-त्राहि पुकारने लगा तो ईश्वरको राजातन्त्रके विधायक मनु आदि शासक राजाओंकी व्यवस्था करनी पड़ी, तथा वेदके द्वारा शासन का भी विधान ।"

"न राज्यं न च राजासीन्नदण्यो न च दाण्डिकः ।
स्वधर्मेण प्रजास्तावत् रक्षन्तिस्मपरस्परम् ॥ (महाभारत)

रामराज्यमें किसी भी कार्यके लिये प्रजाकी अनुमति अपेक्षित रहती थी । रामके राज्याभिषेकमें भी समस्त प्रजावर्गका अनुमोदन प्राप्त था । चारित्र्य सम्पन्न होनेपर ही प्रजायें राजापर प्रसंन्न रहतीं थी, और वह शास्त्रीय राज्याधिकारी समझा जाता था । राजा सगरका पुत्र असमंजस, प्रजाओंसे अनभीष्ट होनेके नाते ही राज्यके अयोग्य घोषित कर निर्वासित कर दिया गया था ।

देखिये अभी भी कुछ समय पूर्व इंग्लैण्डके अष्टम एडवर्ड किसी कामिनीमें आसक्त हृदय होनेके कारण राज्याधिकारी न हो पाकर अर्ध रात्रिके समय राज्य परित्यागकर "कैनाडा" को निकल गया था । निर्गमनके समय राज्य सिंहासन देखने तक के लिये भी उसे अधिकार नहीं दिया गया ।

धर्म राज्यके शासन सूत्रसे बँधा हुआ प्रजाओंका मन किंचित् भी टससे मस नहीं हो पाता। इसीलिये सभी अतिसन्तोषसे तृप्त रहते हैं । ईश्वरीय शासन आदेश देता है कि—

अपनी शक्तिके परेके कार्य एवं धर्मका उलंघन करने एवं विपक्षियोंके सम्मुख दीनता दिखानेसे साध्य होसकनेवाले कार्य मनमें ही नहीं लाये जाने चाहिये। बिना किसीको सन्तप्त किये, बिना दुष्टोंके दरवाजे खट-खटाये, तथा बिना सन्मार्गका उलंघन किये जो थोड़ा भी प्राप्त होजाय उसे बहुत समझना चाहिये।

अतिक्लेशेन ये अर्थाः धर्मस्याति क्रमेण च।
शत्रूणां प्रणिपातेन मा च तेषु मनः कृथाः॥
अकृत्वा परसन्तापमगत्वा खल मन्दिरम्।
अनुल्लंघ्य सताम्मार्गं यत्स्वल्पमपि तद्बहु॥ (विदुर)

राम राज्यमें चरित्र बलका इतना सर्वोत्कृष्ट महत्व है, कि भरत भी अपने मातुल घरसे लौट आनेपर और सब कुछ जान लेनेके बाद बिना रोये गाये माता कैकेयीसे रामके चरित्रके विषयमें ही पूँछने लगे हैं।

तच्छ्रुत्वा भरतस्त्रस्तो भ्रातुश्चारित्र शङ्कया।
स्वस्य वंशस्य माहात्म्यात्प्रष्टुं समुपचक्रमे॥
कच्चिन्न ब्राह्मणधनं हृतं रामेण कस्यचित्।
कच्चिन्नाढ्यो दरिद्रो वा तेनापापो विहिंसितः॥
कच्चिन्न परदारान् वा राजपुत्रोऽभिमन्यते।
कस्मात स दण्डकारण्ये भ्रातारामो विवासितः॥ (वा.रा.)

सामान्य वृत्त सुन लेनेके बाद, भ्राता रामके चरित्रकी आशंका से डर गये भरत, अपने वंशके महत्वपर दृष्टिकोण रखकर पूछना प्रारंभ किये। उन्होंने कहा क्या राम किसी ब्राह्मणका धन तो नहीं अपहरण कर लिये, अथवा किसी धनी या दरिद्रकी हिंसा तो नही कर डाले। क्या ? बलात् किसी दूसरेकी स्त्री की ओर राजकुमार अपना मन तो

नही ले गये, क्यों ? वे मेरे भ्राता राम दण्डकारण्यमें विवासित किये गये।

राम राज्यमें राजरानीके चरित्रके विषयमें भी चर्चा करनेके लिये सर्वसाधारणको भी अधिकार दिया जाता है। देखिये--महारानी सीता के विषयमें भी (पोरा--चर्चन्ति) पुरवासियों द्वारा की गई चर्चायें सुनी गई हैं। उस समय वेदज्ञ-ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण और कुत्तेके बीच भी बिना भेदभाव तथा बिना पक्षपातके यथोचित न्याय दिया जाता था।

उनके कालमें भी आठ अमात्योंकी एक परिषद् थी। बिना उसको पूछे राजाको कुछ भी करनेका अधिकार नहीं था। उस अमात्य संस्थाको भी शासित करनेके लिये अवैतनिक अष्ट ऋषियोंका एक मण्डल था जिसके प्रधान महर्षि वसिष्ठ थे।

दार्शनिक प्लेटोने भी इसी प्रकारके शासन सूत्रकी कल्पना की है।

विश्वामित्र ऋषि जब यज्ञ रक्षाके प्रसङ्गमें राजा दशरथसे राम की याचना कर नकारात्मक उत्तर प्राप्त किये, तब वे ऋषि मण्डलके ही पास अपनी प्रार्थना सुनाये थे, और फिर महर्षि वसिष्ठके उचित समाधानके अनन्तर कृतकार्य हो सके हैं।

जिस समय कालके साथ रामके एकान्त वार्तालापका प्रसङ्ग चल रहा था और लक्ष्मण द्वारपाल बने थे। शर्त यह थी कि बिना बातचीतके पूर्ण हुए जो कोई भी अन्तःप्रवेश करेगा उसे प्राणदंड होगा। परन्तु जब दुर्वासा ऋषिके आगमनकी सूचना जाकर देनेके कारण लक्ष्मण पर ही यह दोषारोपण हुआ, और उसके निर्णयके लिये ऋषिमण्डलके प्रमुख महर्षि वसिष्ठ पदासीन हुए, तब वे राज्यसिंहासनके प्रतिष्ठार्थ यही अपना निर्णय दिये थे कि अवश्य लक्ष्मण इस प्रसङ्गमें दण्ड्य हैं। वह ऋषि मण्डल भी धर्मके शासनकी सत्ताको स्वीकार करके ही कार्य करनेमें

किसी भी निर्णयमें प्रवृत्त होता था। ऐसे ही शासनाभाव बादके समय भी धर्मका ही शासन था।

सारांश यह कि महर्षि वाल्मीकिका कथन है कि यदि रामके शासनसूत्रसे—धर्मके शासनसे राष्ट्र शासित रहेगा तो—आधि-व्याधि और किसी भी प्रकारकी बाधाओंसे क्लेश नहीं होगा।

धर्मेण शासिते राष्ट्रे न च बाधा प्रवर्तते।
नाधयो व्याधयश्चैव रामे राज्यं प्रशासति॥

भगवान् रामके राज्यमें सर्वप्रसन्न, धर्मात्मा-बहुश्रुत लोग बसते थे। वे अपने वित्तसे सन्तुष्ट रहते थे। कोई दरिद्र नहीं था। ऐसा कोई कुटुम्ब नहीं था जिसके पास गौ, घोड़े धनधान्य न रहे हों। सब सत्यवादी थे, कोई कामीकदर्य-नृशंस मूर्ख और नास्तिक नहीं था। सब स्त्री पुरुष धर्मशील और जितेन्द्रिय थे। वहां कोई क्षुद्र-चोर, जार और संकर न थे। असूया करनेवाले-असमर्थ और अविद्वान् भी नहीं थे। सभी दीर्घायु थे। सब धर्म और सत्यसे युक्त थे। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी यही कहा है—

दैहिक दैविक भौतिक तापा।
रामराज्य काहुहि नहि व्यापा॥ आदि—

ऐसे ही भारतीय धर्म राज्योंके और भी सुन्दर २ वर्णन आते हैं।

न मे स्तेनो जनपदे न कदर्य्यो न मद्यपः।
नानाहिताग्निर्नाविद्वान्न स्वैरी स्वैरिणीकुतः॥

एक भारतीय शासक का उद्घोष है कि—

मेरे सारे राज्यमें कोई चोर नहीं है, कोई कामी पुरुष नहीं है, मदिरा पान करनेवाला भी कोई नहीं हैं। अधिकारी होते हुए भी

अग्निहोत्र न करनेवाला अर्थात् कर्तव्यच्युत कोई नहीं है । मूर्ख कोई नहीं है, और जब कि व्यभिचारी पुरुष कोई नहीं है तब स्त्री तो भला व्यभिचारिणी कैसे हो सकती है ।

अपना कर्तव्य

इतना समझ लेनेपर अब हमें किसी नये कल्पित वाद विवादके चक्करमें न पड़कर उसी पवित्र मार्गका अनुसरण करना चाहिये, जिस पर चलकर हम सभीके पिता-पितामह और प्रपितामह शताब्दियों और सहस्राब्दियों तक ही नहीं लक्षाब्दियों तक निश्चल निश्चिन्तता और निरापद पवित्रताके साथ अनन्त आनन्दका उपभोग करते रहे हैं। शतशः अनुभूत सिद्ध रसायनका परित्याग कर अज्ञात, अपरिचित प्रयोगोंमें लुब्ध हो जाना कोई बुद्धि मानी नहीं ।

" येनास्य पितरोयाता येन याताः पितामहाः ।
तेन यातात्सताम्मार्गन्तेनगच्छन्न रिष्यति ॥ " (मनुः)

किसी धर्म-किसी शास्त्र या किसी सनातन विधानको क्या पड़ी है कि वह हम सबसे प्रार्थना करने आये कि आप मुझे मानिये और सुखी हो जाइये । जिसे सहस्रवार-लाखवार गर्ज हो वह उसे माने और सुखी हो—शिष्टिकी-सलाह है कि—

" रामादिवत् प्रवर्त्तितव्यं न रावणादिवत् "

रामके समान आचरण-व्यवहार करो, रावणके सदृश नहीं, अन्यथा मिट जावोगे । इसलिये—

एष निष्कण्टकः पन्था यत्र सम्पूज्यते हरिः ।
कुपथं तं विजानीयात् गोविन्दरहितागमम् ॥

जिसमें भगवान्का आराधन हो-आस्तिकता हो वही निष्कण्टक मार्ग है और उससे भिन्न कुपथ । भगवान्के मार्ग पर चलनेसे विफलता

का सामना तो हो ही नहीं सकता और सफलता—निश्चित ही है—यही विश्वास रखकर उठें, जागें और कष्टोंकी परवाह किये बिना कल्याणके साधनोंमें मनको लगा दें—

उत्थातव्यञ्जागृतव्यं योक्तव्यं भूतिकर्मसु ।
भविष्यतीत्येव मनः कृत्वा सततमव्यथः ॥

भारतीय संस्कृतिके अनुसार सभी पवित्र कार्य्योंमें प्रवृत्त होते समय सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, परमेश्वरका आश्रय भी साथमें रखना चाहिये। इससे साधनों और मार्गमें अपवित्रताएँ नहीं आनें पातीं तथा सिद्धि भी निकट दौड़ी आती है। अतः महायोगेश्वर भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्रका यह आदेश स्मरण रखते हुए न्यायके संग्राममें अदम्य दृढ़ता, पूर्ण आत्मविश्वास तथा उत्साहके साथ बढ़ते चलना चाहिये—

" तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मरयुद्धच "

कर्तव्य तथा धर्म पालन से ही राष्ट्र का अभ्युदय

उपर्युक्त विचारों का अभिप्राय यही कि बिना धार्मिक भावनाओं के प्रतिष्ठापन के समाज एवं राष्ट्र का सुसंघटन हो ही नही सकता। आज सांसारिक सुख सम्पत्ति तथा उत्तम वैभवों से विहीन लोग दूसरों की उक्त सामग्रियों को देखकर स्पृहा या ईर्ष्या करते हैं। क्यों कोई सुख सामग्री सम्पन्न, और हम क्यों दरिद्र एवं दुःखी रहें। बस इसी कारण दुर्भावनापूर्ण लोग अपने अपने कर्तव्यों से वंचित होकर राष्ट्र और समाज के जीवन को संकट बना देते हैं। वस्तुतः शास्त्र और धर्म एक ऐसी वस्तु है जिससे सभी में सन्तोष एवं सामंजस्य की भावना प्रतिष्ठित होती है। प्राचीन समय से शास्त्र और धर्म से प्रभावित लोग पर-स्त्री और परद्रव्य को विष के समान मानते थे। उनका विश्वास था कि सम्पत्ति-विपत्ति, सुख दुःख में अपने शुभाशुभ कर्म ही मुख्य हेतु

हैं। जैसे अपने कर्म वश कोई पशु, कोई पक्षी, कोई, अन्ध, पंगु, बधिर या उन्मत्त होता है, वैसे कर्मों के अनुसार ही कोई भोग सामग्री से विहीन और कोई उससे सुसम्पन्न होता है। इस प्रकार दुःख दारिद्र्य प्राणी को अपने शुभाशुभ कर्मों के अनुसार ही सुख-दुःख सम्पत्ति-विपत्ति भोगनी पड़ती है। उसे अपनी ही सम्पत्ति तथा सुख-सामग्री में सन्तुष्ट रहना चाहिये। परकीय धन और कलत्र की स्पृहा न करते हुए अपने सत्प्रयत्नों से सुन्दर भोग सामग्री सम्पादन यद्यपि अति युक्त ही है, तथापि दूसरों की सामग्रियों से ईर्ष्या-करना, उसे अपहरण करना अवश्य ही पाप है। पहले समय में पाप वन जाने पर पापी स्वयं जाकर राजा से दण्ड ग्रहण करते और उससे शुद्धि समझते थे। 'लिखित' महर्षि ने अपने भाई शंख के ही उद्यान से फल लेने को ही चोरी समझकर और उससे शुद्ध होनेके लिये राजसभा में स्वयं जाकर राजाकी अनिच्छा रहते हुए भी हस्तच्छेदन करा दिया था। इस तरह जब अपनी न्यायोपार्जित सामग्रियों में सन्तुष्ट रहने का अभ्यास था, परोपकार करने से पुण्य वृद्धि एवं उत्सुकता तथा परपीडन में घृणा और उद्वेग होता था, तब समाज तथा राष्ट्र की व्यवस्था स्वभावतः समुचित और अभ्युदय शील थी।

इसलिये हमें अपने कर्तव्य, अकर्तव्य तथा धर्म और अधर्म का निर्णय शास्त्रानुसार ही आवश्यक है। कुछ लोग कहते हैं कि शास्त्रों एवं शास्त्र प्रतिपाद्य धर्मों को मानने वालों में कष्ट ही दिखाई देता है। अतः शास्त्र न मानना ही श्रेष्ठ है। परन्तु यह बात विना विचार से ही है। क्योंकि वास्तविक सुख तो तृप्ति से ही होता है। पशुओं में भोजन और मनुष्यों में ज्ञान से तृप्ति होती है। ज्ञान भी शास्त्र तथा धर्माचरण से होता है। वह ज्ञान किसी भी अवस्था में सुख का प्रतिबन्धक नही बन सकता। जहां कहीं अधर्म के प्राबल्य में भी सुख-सम्पत्ति तथा

वैभव देखा जाता है, वहां पर पूर्व जन्म के तपोवल और धर्म को ही कारण समझना चाहिये। इसी प्रकार शास्त्र सम्पन्न तथा धर्म शील व्यक्तियों के वर्तमान दुःखों के भी कारण प्राक्तन अशुभ संस्कार ही होते हैं।

रावण का अद्भुत वैभव देखकर श्री हनुमानजी ने कहा था कि यदि "अधर्म बलवान् न होता, तव तो यह रावण शक्र सहित सुरलोक का शासक होता—

"यद्यधर्मो न बलवान् स्यादयं राक्षसेश्वरः।
स्यादयं सुर लोकस्य सशक्रस्यापि रक्षिता॥ (वा० रा०)

श्री हनुमानजी फिर भी एक दूसरे प्रसङ्ग में कहे थे कि हे रावण! तुम्हें धर्म का फल प्राप्त हो चुका अब इस अधर्म का भी फल शीघ्र मिलेगा।

प्राप्तं धर्मफलं तावत् भवता नात्र संशयः।
फलमस्याप्यधर्मस्य क्षिप्रमेव प्रपत्स्यते॥

इसलिये सिद्धांत यही होना चाहिये कि धर्म विपरीत अति विशिष्ट फल का भी सेवन बुद्धिमान् पुरुष कदापि न करे।

"धर्मादपेतं यत्कर्म यद्यपि स्यान्महाफलम्।
न तत्सेवेत मेधावी नहि तद्धितमुच्यते॥"

धर्म से विद्या, रूप, धन, शौर्य्य, कुलीनता, आरोग्य, राज्य, स्वर्ग, मोक्ष सब कुछ मिलता है।

"विद्या रूपं धनं शौर्य्यं कुलीनत्वमरोगता।
राज्यं स्वर्गश्च मोक्षश्च सर्वं धर्मादवाप्यते॥"

"यतोधर्मस्ततोजयः"

मुद्रक एवं प्रकाशक:

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,

खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, मुंबई - ४०० ००४.

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS

